अध्याय 7

परमात्मा की दो प्रकार की प्रकृति है एक परा (चेतन) और दूसरी अपरा (जड़)। ये दोनों सर्वथा विभिन्न हैं। पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार यह अपरा प्रकृति है तथा जीव रूप चेतन जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है – मेरी परा प्रकृतियों से उत्पन्न हुये हैं। जैसे माला में मोती पिरोये हुये हैं, वैसे ही उस परमात्मा में समूचा जगत् पिरोया हुआ है। सब में उसी की स्थिति हैं। जल में रस, सूर्य एवं चन्द्रमा में चमक, वेदों में ओंकार और पुरुषों में बल वही है। वही सारे प्राणियों का बीज है। सभी भाव उसी से उत्पन्न होते हैं। सत्व, रज एवं तम इन तीन गुणों से सारा संसार ओतप्रोत है तथा इन के कारण मोहित होकर वह परम अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है। परमात्मा की गुणमयी माया बड़ी विचित्र है। प्रभु शरण में जाने पर ही मानव इस माया को पार कर सकता है। प्रभु के चार प्रकार के भक्त होते हैं आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। ये सब के सब प्रभु के ही भक्त हैं। परन्तु जो ज्ञानी भक्त निष्काम भाव से प्रभु का भजन करते हैं। वह सबसे श्रेष्ठ भक्त हैं। किसी कामना के कारण विभिन्न देवताओं की भक्ति करने वालों की भी श्रद्धा को परमात्मा उन-उन देवताओं में दृढ़ कर देता है। उन-उन कामनाओं को वे उन-उन देवताओं से पूरी कर लेते हैं। परन्तु उनको जो फल मिलता है वह स्थायी नहीं होता है। निष्कामभाव से प्रभुभक्ति करने वाले व्यक्ति सुख दुःख को पार करके परमात्मा में लीन हो जाते हैं। अतः अहंकार का त्याग कर प्रभुचरणों में समर्पण कर दे और अनंत, असीम प्रभु को किन्हीं विशेषणों द्वारा सीमाबद्ध करने का प्रयत्न न करे।

1. **मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।**
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।।

सुन अर्जुन! अमाँ मुझ में पाये हुए,
मेरी ज़ात में लौ लगाये हुए।
तुझे योग की मश्क का ध्यान हो,
तो सुन किस तरह मेरी पहचान हो।।

शब्दार्थ – मयि–मुझ में; आसक्तमनाः–आसक्त मनवाला; पार्थ–हे अर्जुन; योगम्–आत्मसाक्षात्कार; युञ्जन्–अभ्यास करते हुये; मद्आश्रय–मेरे आश्रयवाला; असंशयम्– असंदिग्ध; समग्रम्–पूर्ण रूप से; माम्–मुझे; यथा–जिस प्रकार; ज्ञास्यसि–जान सकते हैं; तत्–वह; शृणु–सुनें ।

अमां–सहारा; लौ–ध्यान; ज़ात–आत्मा; मश्क–अभ्यास ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! अब सुनो कि तुम किस प्रकार मेरी भावना से पूर्ण होकर एवं मन को मुझ में आसक्त करके योगाभ्यास करते हुए मुझे पूर्णतः संशयरहित जान सकते हो ।

2. **ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।**
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।

मैं करता हूँ वो राज़-ए कामिल बियाँ,
करे इल्म-ओ उरफ़ाँ जो तुझ पर इयाँ ।
यह पहचान कर सब को पहचान ले,
जो है जानने का वो सब जान ले ।।

शब्दार्थ – ज्ञानम्–ज्ञान को; ते–तुझे; अहम्–मैं; सविज्ञानम्– विज्ञान सहित; इदम्–यह; वक्ष्यामि–बतलाऊँगा; अशेषतः–सम्पूर्णता से; यत्–जिसे; ज्ञात्वा–जानकर; इह–इस लोक में; भूयः–फिर; अन्यत्–और-कुछ; ज्ञातव्यम्–जानने को; अवशिष्यते–बच रहता है ।

कामिल–श्रेष्ठतम रहस्य; इल्म-ओ उरफ़ाँ–ज्ञान-विज्ञान; इयाँ–प्रगट ।

भावार्थ – अब मैं तुझको व्यावहारिक एवं दिव्यज्ञान बतलाऊँगा जिसे जान लेने के बाद इस लोक में जानने को फिर और कुछ शेष नहीं रह जाता ।

3. **मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।**
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।

हज़ारों में होगा कोई ख़ाल-ख़ाल,
हो जिसको फ़िकर-ए हसूल-ए कमाल।
हो इन बाकमालों में कोई बशर,
जो मेरी हक़ीक़त से पाये ख़बर।।

शब्दार्थ –मनुष्याणाम्–मनुष्यों के; सहस्रेषु–हज़ारों में; कश्चित्–कोई; यतति–प्रयत्न करता है; सिद्धये–सिद्धि के लिये; यतताम्–उन प्रयत्न करने वालों में; अपि–भी; सिद्धानाम्–सिद्धों के; कश्चित्–कोई; माम्–मुझे; वेत्ति–जानता है; तत्त्वतः–यथार्थ रूप में।

ख़ाल-ख़ाल–कोई विरला; हसूल-ए कमाल–परमसिद्धि; बा-कमालों–सिद्धों; बशर–मानव; हक़ीक़त–तत्त्व।

भावार्थ –हज़ारों व्यक्तियों में से कोई एक ईश्वर की सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करने वालों में से विरला ही कोई एक ईश्वर के यथार्थ रूप को जान पाता है।

4. **भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

यह मिट्टी यह पानी यह आग और हवा,
यह आकाश दुनियाँ पे छाया हुआ।
यह दानिश, यह दिल, यह ख्याल-ए ख़ुदी,
है इन आठ हिस्सों में फ़ितरत मेरी।

शब्दार्थ –भूमिः–पृथ्वी; आपः–जल; अनलः–अग्नि; वायुः–वायु; खम्–आकाश; एव–भी; च–और; अहंकारः–अहंकार; इति–ऐसे; इयम्–यह; मे–मेरी; भिन्ना–विभक्त है; प्रकृतिः–स्वरूप, प्रकृति; अष्टधा–आठ प्रकार से।

दानिश–बुद्धि; ख्याल-ए ख़ुदी–अहंकार; फ़ितरत–प्रकृति।

भावार्थ –पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार मेरी प्रकृति इन आठ में विभक्त है।

5. **अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।**
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।

यह फ़ितरत तो अदना है सुन ओ कवी!,
मगर मेरी फ़ितरत है इक और भी।
वो फ़ितरत है आला बने जो हैयात,
इसी से तो कायम है कुल कायनात।।

शब्दार्थ – अपरा–अपर अर्थात् जड़ प्रकृति रूप; इयम्–यह; इतः–इससे; तु–तो; अन्याम्–अन्य, भिन्न; प्रकृतिम्–स्वरूप को, प्रकृति को; विद्धि–जान; मे–मेरी; पराम्–पर रूप वाली, चेतन जीव वाली; जीवभूताम्–जीव रूप; महाबाहो–हे महा भुजाओं वाले अर्जुन; यया–जिससे; इदम्–यह; धार्यते–धारण किया जाता है।

फ़ितरत–प्रकृति; अदना–अपरा; आला–परा; हैयात–जीव स्वरूपा; कायम–स्थित; कायनात–सर्वप्राणी।

भावार्थ – यह आठ प्रकार के भेदों वाला मेरा 'अपर' रूप है, जड़ रूप है। हे अर्जुन! मेरे 'पर' रूप को चेतन रूप को भी जान ले जो 'अपर' रूप से भिन्न है और जिसके द्वारा यह संसार धारण किया जाता है।

6. **एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।**
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।

इन्हीं फ़ितरतों से है सब हस्त-ओ बूद,
इन्हीं के शिकम से हुए सब वजूद।
सो मुझ से है आग़ाज़-ए आलम तमाम,
मेरी ज़ात में सब का हो इखतताम।।

शब्दार्थ– एतद् योनीनि–ये दोनों शक्तियाँ; भूतानि–प्राणी; सर्वाणि–सब; इति–यह; उपधारय–समझ ले; अहम्–मैं; कृत्स्नस्य–सम्पूर्ण; प्रभवः–उत्पत्ति-स्थान; प्रलयः–विनाश।

हस्त-ओ बूद–सर्वप्राणी; शिकम–पेट; वजूद–शरीर; आग़ाज़–उत्पत्ति; आलम्–जगत्; एख़तताम–लय।

भावार्थ – संसार के सब प्राणी इन दोनों से उत्पन्न होते हैं–यह समझ ले और मैं इस सम्पूर्ण जगत् का आदि एवं अंत हूँ।

7. **मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।**
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।

सुन अर्जुन नहीं कुछ भी मेरे सिवा,
न है मुझ से बढ़ कर कोई दूसरा।
परोया है सब कुछ मेरे तार में,
कि हीरे हों जैसे किसी हार में।।

शब्दार्थ– मत्तः–मुझसे; परतरम्–अधिक परे; अन्यत्–अन्य; किंचित्–कोई वस्तु; अस्ति–है; धनंजय–हे अर्जुन! मयि–मुझ में; सर्वम्–सब; इदम्–यह; प्रोतम्–पिरोया हुआ है; सूत्रे–धागे में; मणिगणाः–मणियाँ; इव–सदृश।

भावार्थ –हे अर्जुन! मुझ से परे अन्य कोई वस्तु नहीं है। जो कुछ भी संसार में यह सब है, वह सब मुझ में उसी प्रकार पिरोया हुआ है जैसे मणियाँ धागे में पिरोई रहती हैं।

8. **रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।**
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।

मैं पानी में रस, चाँद सूरज में नूर,
मैं हूँ 'ओ३म्' वेदों में जिसका ज़हूर।
सदा मुझको आकाश में कर ख़्याल,
मैं मरदों में मरदी हूँ कन्ती के लाल।।

शब्दार्थ –रसः–रस; अहम्–मैं; अप्सु–जलों में; कौन्तेय–हे अर्जुन; प्रभा–प्रकाश; अस्मि–हूँ; शशिसूर्ययोः–चन्द्र तथा सूर्य में; प्रणवः–ओंकार; सर्ववेदेषु–सब वेदों में; खे–आकाश में; पौरुषम्–सामर्थ्य; नृषु–मनुष्यों में।

ज़ऊर–प्रगट; सदा–शब्द, मरदों–पुरुषों; मरदी–पुरुषत्व।

भावार्थ –हे अर्जुन! जलों में रस मैं हूँ, चन्द्र तथा सूर्य का प्रकाश मैं हूँ, सब वेदों में ओंकार मैं हूँ, आकाश में शब्द मैं हूँ, पुरुषों में सामर्थ्य मैं हूँ।

9. **पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।**
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।

मैं मिट्टी के अन्दर हूँ खुशबू-ए पाक,
मैं हूँ आग में शाला-ए ताबनाक।
मैं जान-ए जहाँ जानदारों में हूँ,
रियाज़त इबादत गुज़ारों में हूँ।।

शब्दार्थ – पुण्यः गन्धः–सुगन्ध; पृथिव्याम्–पृथिवी में; च–और; तेजः–प्रकाश; अस्मि–हूँ विभावसौ–अग्नि में; जीवनम्–जीवन; सर्वभूतेषु–सब प्राणियों में; तपः–तप; तपस्विषु–तपस्वियों में ।
खुशबू-ए-पाक–पवित्र गंध; शोला–प्रज्वलित अग्नि; ताबनाक–चमकता हुआ तेज; जान-ए जहाँ–जीवनशक्ति; रियाज़त–तप; गुज़ारों–तपस्वियों ।

भावार्थ – पृथ्वी में सुगन्ध मैं हूँ, अग्नि में तेज मैं हूँ, सब प्राणियों में जीवन मैं हूँ, तपस्वियों में तप मैं हूँ ।

10. **बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।**
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।।

सुन अर्जुन मैं हूँ बीज हर हस्त का,
मैं वो बीज हूँ जो न होगा फ़ना।
मैं दानिश हूँ उनकी जो हैं होशियार,
मैं ताविश हूँ उनकी जो हैं ताबदार।।

शब्दार्थ– बीजम्–बीज; माम्–मुझे; सर्वभूतानाम्–सब जीवों का; विद्धि–जान; पार्थ–हे अर्जुन; सनातनम्–शाश्वत; बुद्धिमताम्–बुद्धिमानों की; अस्मि–हूँ; तेजः–तेज; तेजस्विनाम्–तेजस्वियों का; अहम्–मैं ।
हस्त–प्राणी; फ़ना–नाश; दानिश–बुद्धि; होशियार–बुद्धिमान; ताबिश–तेज़; ताबदार–तेजस्वी ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! सब वस्तुओं का सनातन बीज मुझे जान । बुद्धिमानों की बुद्धि मैं हूँ, तेजस्वियों का तेज मैं हूँ ।

11. **बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।**
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

मैं हूँ क़ूअत-ओ ज़ोर मरद-ए बसे,
मगर हैं हवा-ओ हवस से बरी ।
सुन अर्जुन मैं ख़्वाहिश हूँ इन्सान की,
जो दुश्मन न हो धर्म इमान की ।।

शब्दार्थ– बलम्–बल; बलवताम्–बलवानों का; च–और; अहम्–मैं; काम-राग-विवर्जितम्–काम तथा राग से रहित; धर्माविरुद्धः–धर्म से अविरुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल; भूतेषु–प्राणियों में; कामः–इच्छा; अस्मि–हूँ; भरतर्षभ–भरतश्रेष्ठ अर्जुन ।

क़ूअत–बल; मरद-ए जरी–बलवान्, हवा-ओ-हवस–अहंकार और लोभ; बरी–रहित; ख़्वाइश–कामना ।

भावार्थ– बलवानों का 'काम' और 'राग' से रहित बल मैं हूँ। हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन ! मैं वह काम हूँ जो धर्म के विरुद्ध नहीं है ।

12. **ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।**
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।

मुझीं से है फ़ितरत सतोगुण कहीं,
मुझीं से रज़ोगुण तमोगुण कहीं ।
मगर मैं बरी इनसे हूँ बिल-यकीं,
ये मुझ से हैं लेकिन मैं इनसे नहीं ।।

शब्दार्थ– ये–जो; च–और; एव–ही; सात्त्विकाः–सत्वगुण से उत्पन्न; भावाः–भाव अर्थात् प्रकृति या स्वभाव; राजसाः–रजोगुण से उत्पन्न; तामसाः–तमोगुण से उत्पन्न; च–और; ये–जो; मत्तः–मुझ में; एव–ही; इति–इस प्रकार; तान्–उन्हें; विद्धि–जानो; तु–तो, अहम्–मैं; तेषु–उनमें; ते–वे; मयि–मुझ में ।

बिलयकीं–निःसंदेह ।

भावार्थ– और जो सात्त्विक, राजस तथा तामस भाव (प्रकृति) ये सब केवल मुझसे ही प्रकट होते हैं, मैं उनमें फंसा नहीं हूँ, वे मुझ में आश्रित हैं ।

13. **त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।**
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।

गुणों से हुए वस्फ़ तीनों अयाँ,
हुए जिनसे गुमराह एहल-ए जहाँ ।
समझते नहीं लोग मेरा कमाल,
कि बाला हूँ मैं इनसे और बे-ज़वाल ।।

शब्दार्थ – त्रिभिः–तीन प्रकार के; गुणमयैः–गुणों से युक्त; भावैः–भावों से, प्रकृति से; एमिः–इनसे; सर्वम्–सारा; इदम्–यह; मोहितम्–मोहग्रस्त; अभिजानाति–नहीं जानता है; माम्–मुझे; एभ्यः–इनसे; परम्–परे; अव्ययम्–अविनाशी को ।

वस्फ़–भाव; अयाँ–प्रगट; गुमराह–पथ-भ्रष्ट; एहल-ए जहाँ–साँसारिक लोग, कमाल–श्रेष्ठता; बाला–ऊपर; बे-जवाल–अव्यय ।

भावार्थ – यह सारा संसार प्रकृति के इन तीन गुणों (सतो, रजो व तमो) के द्वारा मोहग्रस्त है । अतः मुझ गुणातीत एवं अविनाशी को नहीं जानता ।

14. **दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।**
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।

गुणों से जो माया हुई आ-शिकार,
यह माया है या फ़ितरत-ए किर्दगार ।
कहाँ इससे इन्साँ कभी पार हों,
फ़कत पार मेरे परस्तार हों ।।

शब्दार्थ – दैवी–दिव्यगुणों वाली, अलौकिक; हि–निश्चय से; एषा–यह; गुणमयी–सत्व, रज, तम–इन तीन गुणों वाली; मम–मेरी; माया–कारीगरी; दुरत्यया–पार कर पाना कठिन है; माम्–मुझे; एव–ही; ये–जो; प्रपद्यन्ते–शरण में आते हैं; मायाम्–माया को; एताम्–इसको; तरन्ति–तर जाते हैं; ते–वे ।

माया–धोखा; आ-शिकार–प्रगट; फ़ितरत-ए किर्दगार–स्रष्टा की सृष्टि; फ़कत– केवलमात्र; परस्तार–उपासकगण ।

भावार्थ –यह तीन गुणों वाली गुणमयी प्रकृति मेरी दैवी (अलौकिक) माया है। इसका पार पाना कठिन है। जो लोग केवल मेरी शरण में आ जाते हैं वे इस माया को सरलता से पार कर जाते हैं।

15. **न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।**
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।।

जो गुमराह बद-कुन हैं और पुर ख़ता,
करे ज्ञान-गुण उनके माया फ़ना।
पसन्द उनको सीरत है शैतान की,
मेरे पास आते नहीं वो कभी।।

शब्दार्थ –न–नहीं; माम्–मुझे; दुष्कृतिनः–दुष्ट; मूढाः–मूढ; प्रपद्यन्ते–शरण ग्रहण करते हैं; नराधमाः–नराधम; मायया–माया से; अपहृतज्ञानाः–हरी गई है बुद्धि (ज्ञान) जिनकी वे; आसुरम्–आसुरी; भावम्–भाव को; आश्रिताः–धारण किया है जिन्होंने।

गुमराह–पथभ्रष्ट; बद-कुन–कुकर्मी; पुर-ख़ाता–पापी; फ़ना–नाश; सीरत–स्वभाव; शैतान–असुर।

भावार्थ – परन्तु माया से जिनकी बुद्धि हर ली जाती है, जिन्होंने आसुरी भाव धारण कर लिया है, बुरे काम करने वाले मूर्ख, नराधम लोग मेरी शरण में नहीं आते।

16. **चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।**
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञान च भरतर्षभ।।

सुन अर्जुन हैं मेरे परस्तार चार,
तलबगार मेरे निकोकार चार।
दुःखी शख़्स या इल्म की जिसको धुन,
तलब ज़र की या जिसमें हो ज्ञान गुण।।

शब्दार्थ – चतुर्विधाः–चार प्रकार के; भजन्ते–भक्ति करते हैं; माम्–मुझे; जनाः–लोग; सुकृतिनः–जिज्ञासु; अर्थार्थी–लोभी; च–और; भरतर्षभ–भरतश्रेष्ठ!

परस्तार–भक्त; तलबगार–इच्छुक; निकी-कार–सुकर्मी; शख़्स–मनुष्य।

भावार्थ – हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! चार प्रकार के भक्त मेरी भक्ति करते हैं। वे हैं–आर्त (दुःखी), जिज्ञासु, अर्थार्थी (लोभी) एवं ज्ञानी।

17. **तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।**
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।

जो ज्ञानी है चारों में सरदार है,
मुझी में वो यकदिल है सरशार है।
करे ज़ात-ए यकता की भक्ति सदा,
मैं प्यारा हूँ उसका वो प्यारा मेरा।।

शब्दार्थ– तेषाम्–उन सब में; नित्ययुक्तः–सदा ब्रह्म के साथ युक्त हुआ; एकभक्तिः–अनन्य भक्ति वाला; विशिष्यते–सब से श्रेष्ठ है; प्रियः–प्रिय; हि–क्योंकि; ज्ञानिनः– ज्ञानी का; अत्यर्थम्–अत्यन्त; अहम्–मैं; सः–वह; च–और; मम–मुझे, मेरा; प्रियः–प्रिय है।
सरदार–श्रेष्ठतम; यकदिल–तल्लीन; सरशार–युक्त; ज़ात-ए यकताँ–अद्वैत सत्ता।

भावार्थ – उन सब में ज्ञानी भक्त, जो सदा ब्रह्म के साथ युक्त रहता है वही ब्रह्म का साक्षात्कार पाता है, वही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इस प्रकार के ज्ञानी भक्त को ईश्वर अत्यन्त प्रिय है और वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

18. **उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।**
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।

परस्तार हर एक गो नेक है,
जो ज्ञानी है मुझ से मगर एक है।
वो यकदिल है और उससे यकदिल हूँ मैं,
वो कायम है और उसकी मन्ज़ल हूँ मैं।।

शब्दार्थ –उदाराः–उदार हृदय वाले; सर्वे–सब; एव–ही; मे–मेरा; मतम्–मानता हूँ; आस्थितः–स्थित होकर; सः–वह; हि–क्योंकि; युक्तात्मा–आत्मा को जोड़कर; माम्–मुझे; एव–ही; अनुत्तमाम्–सर्वोच्च; गतिम्–गति को।
परस्तार–उपासक; यकदिल–एकमेव; कायम–स्थित; मन्ज़ल–गति।

भावार्थ – वैसे तो उक्त सभी श्रेष्ठ हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप है क्योंकि वह अपनी आत्मा को मेरे साथ जोड़कर, मुझ में स्थित होकर अति उत्तम गति को पाता है ।

19. **बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।**
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।

जनम पर जनम ले के ज्ञानी ज़रूर,
पहुँच जाये आख़िर को मेरे हज़ूर ।
वो जाने कि सब कुछ है, जान-ए जहाँ,
महा-आत्मा ऐसा होगा कहाँ ।।

शब्दार्थ – बहुनाम्–अनेकों; जन्मनाम्–जन्मों के; अन्ते–अन्त में; माम्–मुझे; प्रपद्यते–पा लेता है; वासुदेवः–सब प्राणियों में वास करनेवाला; सर्वम्–वही सब है; इति–यह; सः–वह; महात्मा–महात्मा; सुदुर्लभः–अत्यन्त दुर्लभ है ।

हजूर–सम्मुख; जान-ए जहाँ–सर्व वासुदेव ।

भावार्थ – अनेक जन्मों के पश्चात् यह अनुभव हो जाने से कि जो कुछ है सब वासुदेव ही है ज्ञानवान् मुझे पा लेता है । ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है ।

20. **कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।**
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।

हवा-ओ हवस से जो मजबूर हैं,
हुए ज्ञान से उनके दिल दूर हैं ।
करें दूसरे देवताओं से प्रीत,
निकालें तबीयत से पूजा की रीत ।।

शब्दार्थ – कामैः–भोगों की कामनाओं से; तैः तैः–उन-उन से; हृतज्ञानाः–जिनका ज्ञान हरा जा चुका है; प्रपद्यन्ते–उपासना करते हैं; अन्यदेवताः–अन्य देवताओं को; तम् तम्–उस-उस; नियमम्–नियम को; आस्थाय–आश्रय लेकर; प्रकृत्या–प्रकृति से (अपने स्वभाव से); नियताः –प्रेरित हुए; स्वया–अपनी ।

हवा–अहंकार; हवस–लोभ ।

भावार्थ – अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रेरित हुए, विभिन्न कामनाओं के कारण जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे विभिन्न नियमों का आश्रय लेकर अन्य देवताओं की उपासना करते हैं ।

21. यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।

किसी रूप का भी परस्तार हो,
यक़ीं से इबादत में सरशार हो ।
परस्तार ऐसा भटकता नहीं,
मैं करता हूँ मज़बूत उसका यक़ीं ।।

शब्दार्थ –यः यः –जो-जो; याम्-याम्–जिस-जिसको; तनुम्–देवता के शरीर को; श्रद्धया–श्रद्धा से; अर्चितुम्–पूजा करने को; इच्छति–चाहता है; तस्य-तस्य–उस-उसकी; अचलाम्–अचल; श्रद्धाम्–श्रद्धा को; ताम्–उस देवता के प्रति; एव–ही; विदधामि–बना देता हूँ; अहम्–मैं ।

रूप–देवता; परस्तार–पुजारी; यक़ीं–श्रद्धा; इबादत–पूजा; सरशार–युक्त; मज़बूत–दृढ़ ।

भावार्थ – जो-जो भक्त श्रद्धापूर्वक जिस-जिस देवता के रूप की पूजा करना चाहता है मैं देवता के उस-उस रूप में उसकी श्रद्धा को अचल बना देता हूँ ।

22. स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ।।

परस्तश वो ज़ौक-ए यक़ीं से करें,
जिसे देवता मान ले मान ले ।
वो पाता है ज़ोर-ए यक़ीं से मुराद,
जो दर-असल होती है मेरी ही दाद ।।

शब्दार्थ –सः–वह; तया–उससे; श्रद्धया–श्रद्धा से; युक्तः–युक्त हुआ; तस्य–उस देवता के; आराधनम्–पूजा को; ईहते–चाहता है; लभते–प्राप्त करता है; च–और; ततः–उस देवता से; कामान्–कामनाओं को; मया–मुझ से; एव–ही; विहितान्–विधान किये हुए; हि–निश्चय से; तान्–उनको ।

परस्तश—पूजा; जौक-ए यकीं—उत्साहसहित श्रद्धा; जोर-ए यकीं—श्रद्धा के प्रताप से; मुराद—इच्छा; दाद—देन ।

भावार्थ – ऐसा भक्त उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता की आराधना करना चाहता है और उससे ही वह अपनी कामनाओं को पा जाता है, परन्तु वास्तव में उन कामनाओं को मैं ही पूर्ण कर रहा होता हूँ ।

23. अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।

जो नादाँ नहीं ज्ञान में होशियार,
परस्तश से फल पायें नापायदार ।
जो देवों को पूजें वो देवों को पायें,
परस्तार मेरे, मेरे पास आयें ।।

शब्दार्थ – अन्तवत्—नाशवान्; तु—परन्तु; फलम्—फल; तेषाम्—उनका; तत्—वह; भवति—होता है; अल्पमेधसाम्—अल्पज्ञों का; देवान्—देवताओं को; देवयजः—देवताओं की पूजा करने वाले; यान्ति—पहुँचते हैं; माम्—मुझे; अपि—ही ।

नादाँ—मूढ़; परस्तश—पूजा; नापायदार—नश्वर ।

भावार्थ – परन्तु इन अल्प-बुद्धिवालों को जो फल मिलता है वह नाशवान् होता है । देवताओं की पूजा करने वाले लोग देवताओं को पाते हैं, परन्तु मेरे भक्त जैसे ही भजें, अन्त में वे मुझको प्राप्त होते हैं ।

24. अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।

मैं चश्म-ए जहाँ से निहाँ हूँ निहाँ,
मगर मुझ को नादाँ समझ ले अयाँ ।
वो मुझ को नहीं जानते बे-मिसाल,
मेरी ज़ात आली है और बे-जवाल ।।

शब्दार्थ – अव्यक्तम्—अव्यक्त; व्यक्तिम्—देवता के रूप में व्यक्ति को; आपन्नम्—प्राप्त हुए को; मन्यन्ते—मानने लगते हैं; माम्—मुझे; अबुद्धयः—बुद्धिहीन लोग; परम्—परम; भावम्—भाव को, रूप को; अजानन्तः—न जानते हुए; मम—मेरे; अव्ययम्—अविनाशी को; अनुत्तमम्—सर्वश्रेष्ठ को ।

चश्म-ए जहाँ—लोक-दृष्टि; निहाँ—अव्यक्त; अयाँ—व्यक्त; बे-मिसाल—अद्वितीय; बे-जवाल—अविनाशी ।

भावार्थ— बुद्धिहीन व्यक्ति मुझको ठीक से न जानने के कारण सोचते हैं कि मैं पहले निराकार था और अब स्वरूप को धारण किया है । वे अपने अल्पज्ञान के कारण मेरी अविनाशी एवं सर्वोच्च प्रकृति को नहीं जान पाते हैं ।

25. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।

जो मैं योगमाया से मस्तूर हूँ,
जहाँ की नज़र से बहुत दूर हूँ ।
यह मूरख जमाना नहीं जानता,
कि मेरा जनम है न मुझको फ़ना ।।

शब्दार्थ —अहम्—मैं; प्रकाशः—प्रकट रूप में, प्रकाशित रूप में होता हूँ; सर्वस्य—सब का; योगमायासमावृतः—प्रकृति के तीन गुणों के योग रूपी माया से ढका हुआ; मूढः—मूर्ख; अयम्—यह; अभिजानाति—पहचानता है; लोकः—संसार; माम्—मुझे; अजम्—अजन्मा को; अव्ययम्—अविनाशी को ।

मस्तूर—ढका हुआ; फ़ना—नाश ।

भावार्थ —मैं अपनी योगमाया से ढके रहने के कारण सबको प्रकट रूप में प्रकाशित नहीं होता । योगमाया से ढके रहने के कारण यह मूर्ख व्यक्ति मुझ अज तथा अविनाशी को नहीं पहचानता ।

26. वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ।।

जो गुजरी हुई हस्तियाँ हैं सभी,
जो मौज़ूद हैं अब कि होंगी अभी ।
सुन अर्जुन मैं इन सबसे हूँ बा-खबर,
किसी को नहीं इल्म मेरा मगर ।।

शब्दार्थ – वेद–जानता हूँ; अहम्–मैं; समतीतानि–भूतकाल को; वर्तमानानि–जो वर्तमान है; च–और; भविष्याणि–भविष्य को; च–और; भूतानि–प्राणियों को; माम्–मुझे; तु–तो; वेद–जानता है; कश्चन–कोई भी ।

हस्तियाँ–प्राणियों; मौजूद–वर्तमान में; बा-खबर–जानने वाला; इल्म–जानकारी ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! मैं उन सब प्राणियों को जानता हूँ जो अतीत में हो चुके हैं, जो इस समय विद्यमान् हैं और जो भविष्य में होने वाले हैं; परन्तु मुझे कोई नहीं जानता ।

27. इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ।।

ये धोखे की टट्टी हैं इज़्दाद सब,
ये हैं शौक-ओ नफ़रत की औलाद सब ।
इन्हीं से तो अर्जुन यह खलकत तमाम,
परा-गन्दा रहती है यूँ सुबह-शाम ।।

शब्दार्थ – इच्छाद्वेषसमुत्थेन–इच्छा तथा द्वेष से जो उठे हुए अर्थात् उत्पन्न हुए; द्वन्द्वमोहेन–सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के मोह से, भ्रम से; भारत–अर्जुन; सर्वभूतानि–सब प्राणी; सम्मोहम्–भ्रम को; सर्गे–संसार में; यान्ति–जाते हैं, जा पड़ते हैं; परंतप–हे परम तपस्वी ।

इज़्दाद–द्वन्द्व; शौक–राग; नफ़रत–द्वेष; ख़लकत–प्राणीमात्र; परागन्दा–लिपटी हुई ।

भावार्थ – हे भरतवंशी अर्जुन ! इस संसार में इच्छा तथा द्वेष से उत्पन्न होने वाले सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के मोह से सब प्राणी भ्रम में फँसे रहते हैं और प्रभु का ध्यान करने के स्थान में संसार के विषयों में उलझे रहते हैं ।

28. येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ।।

वो इन्साँ भले जिनके आमाल हैं,
गुनाहों से जो फ़ारग-उलबाल हैं।
न अज़्दाद उनको न धोखा न ग़म,
मेरी बन्दगी में हैं साबत कदम।।

शब्दार्थ – येषाम्–जिनका; तु–परन्तु; अन्तगतम्–अन्त हो गया है; पापम्–पाप; जनानाम्–मनुष्यों का; पुण्यकर्मणाम्–पुण्य कर्म करने वालों का; ते–वे; द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः–सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के भ्रम से मुक्त हुए-हुए; भजन्ते–भक्ति करते हैं; माम्–मुझे; दृढव्रताः–दृढ़ संकल्प वाले।

आमाल–कर्म; गुनाहों–पापों; फ़ारग-उलबाल–रहित; अज़्दाद–द्वन्द्व; बन्दगी–पूजा (भक्ति); साबत–दृढ़।

भावार्थ – परन्तु जिन पुण्यात्मा व्यक्तियों के पाप का अन्त हो गया है, वे सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के मोह से, भ्रम से मुक्त होकर दृढ़व्रत होकर प्रभु की भक्ति करते हैं।

29. जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।

मुझी को समझ कर जो उमीद-गाह,
बुढ़ापे से और मौत से लें पनाह।
उन्हें ब्रह्म की खूब पहचान है,
फिर अध्यात्म और कर्म का ज्ञान है।।

शब्दार्थ – जरामरणमोक्षायः–जन्म तथा मृत्यु से छुटकारा पाने के लिये; माम्–मुझे; आश्रित्य–आश्रय लेकर; यतन्ति–यत्न करते हैं; ये–जो; ते–वे; तत्–उस; विदुः–जान जाते हैं; कृत्स्नम्–सब कुछ; अध्यात्मम्–अध्यात्म ज्ञान को; च–और; अखिलम्–सम्पूर्ण को।

उमीदगाह–आशा-निकेतन; पनाह–आश्रय।

भावार्थ – जो लोग मेरा आश्रय लेकर, मेरी शरण में आकर, जरा तथा मरण से मुक्ति पाने के लिये, जन्म तथा मृत्यु से छुटकारा पाने का यत्न करते हैं वे ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्मज्ञान को और अखिल कर्म के रहस्य को जान जाते हैं।

30. **साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।**
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युकतचेतसः ।।

अधीभूत जो लोग मानें मुझे,
अधीदेव अधीयज्ञ भी जानें मुझे ।
वो यकदिल हैं, चित्त उनके हमवार हैं,
दम-ए नज़ा भी मुझ से सरशार है ।।

शब्दार्थ – साधिभूताधिदैवम्–अधिभूत और अधिदैव के सहित; माम्–मुझे; साधियज्ञम्–अधियज्ञ के सहित; च–और; ये–जो; विदुः–जान जाते हैं; प्रयाणकाले–मृत्यु के समय; अपि–भी; च–और; माम्–मुझे; ते–वे; विदुः–जानते हैं; युक्तचेतसः–जिनके मन मुझमें लगे हुये हैं ।

यकदिल–एकमेव; हमवार–युक्त; दम-ए नज़ा–अन्तकाल; सरशार–युक्त ।

भावार्थ – और जो अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ सहित मुझे जान जाते हैं वे भगवान् के साथ युक्त-चित्त होने वाले मृत्यु के समय भी मेरा ही स्मरण करते हैं ।

विशेष सूचना – यह अध्याय पूर्णतः प्रक्षिप्त है ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में ''मैं'' का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व ''परमात्मा'' से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को ''मैं'' के नाम से जाना जाता है ।

आठवाँ अध्याय

प्रत्येक मानव को मृत्यु के समय प्रभुस्मरण करते हुये ही यह शरीर का परित्याग करना चाहिये। तब ही वह उस तक पहुँच सकता है। जो व्यक्ति दूसरे देवताओं या दूसरी वस्तुओं का ध्यान करते हैं वे उन्हीं छोटे खयालों में फँसे रहते हैं। संसार में अपने सब कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए भी सदा एक परमात्मा को ही स्मरण करते रहना चाहिये। वह प्रभु सर्वज्ञ, नित्य, पालनकर्ता, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म आँख, कान आदि कोई जिसे देख या सुन न सके, ख्याल की पहुँच से परे अंधेरे से दूर एक ज्योति है। वेद के ज्ञाता उसी को अक्षर के नाम से पुकारते हैं। उस परमेश्वर का न कोई आदि है न अंत। यह सब चेतना उसी के अन्दर है। वह इन सब में रमा हुआ है। इसी रूप में सब के अन्दर उसकी पूजा करनी चाहिये। वेदों के मार्ग से अर्थात् यज्ञ, तप, दान आदि सारी ऊपरी प्रथाओं से यह मार्ग श्रेष्ठ है।

अंतकाल में व्यक्ति की जैसी भावना होती है वह उसी को पाता है। अतः सदा परमात्मा का ही स्मरण करना चाहिये। प्रभुशरण में जाने पर व्यक्ति जन्ममरण के दुःख से छूट जाता है। सभी लोकों से मनुष्य को पुण्य भोगने के पश्चात् मृत्युलोक में आना पड़ता है। केवल प्रभुशरण में पहुँचे हुये मानव को कभी यहाँ नहीं आना पड़ता। परमेश्वर प्राप्ति भक्ति के बिना कभी संभव नहीं। इस संसार में दो प्रकार की गति मनुष्यों को बताई गई है। साधारण कर्म से आसक्त मनुष्य दक्षिणायन मार्ग से विनाशी स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं। ज्ञानी व्यक्ति उत्तरायण मार्ग से पहुँचते हैं और वहाँ से फिर कभी भी वापिस नहीं आते हैं। उपनिषदों में इन्हीं मार्गों को प्रवृति (भौतिक) एवं निवृति (आध्यात्मिक) मार्ग के नाम से पुकारा गया है।

1. **किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।**
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।

फिर अर्जुन ने पूछा यह भगवान् से,
कि पुरुषोत्तम अब मुझसे फ़रमाइये।
है ब्रह्म अध्यात्म से क्या मुद्दआ,
है कर्म और अधीभूत, अधिदेव क्या?।।

शब्दार्थ – किम्–क्या है; तत्–वह; किम्–क्या है; अध्यात्मम्– अध्यात्म; किम्–क्या है; पुरुषोत्तम–हे पुरुषों में श्रेष्ठ; अधिभूतम्– भौतिक जगत्; च–और; किम्–किसे; प्रोक्तम्–कहते हैं; अधिदैवम्– देवतागण; किम्–किसे; उच्यते–कहते हैं ।

मुद्दआ–अभिप्राय ।

भावार्थ – हे कृष्ण! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? भौतिक जगत् किसे कहते हैं? देवता किसे कहते हैं? कृपया ये सब मुझे बताइये ।

2. **अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।**
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ।।

अधीयज्ञ है क्या चीज़ बतलाइये,
मकीं तन में है कौन फ़रमाइये ।
जिसे दिल पे काबू है मरते हुए,
मधुकश! तुम्हें कैसे पहचान ले?

शब्दार्थ – अधियज्ञः–यज्ञ का स्वामी; कथम्–कैसे; कः–कौन; अत्र–यहाँ; देहे–शरीर में; आस्मिन्–इसमें; मधुसूदन–हे कृष्ण; प्रयाणकाले–मृत्यु के समय; च–और; कथम्–कैसे; ज्ञेयः–जानने योग्य; असि–तू है; नियतात्मभिः–आत्मसंयमी के द्वारा ।

मकीं–स्थित ।

भावार्थ – हे कृष्ण! इस देह का स्वामी कौन है और वह शरीर में कैसे रहता है? मृत्यु के समय भक्ति में रहने वाले व्यक्ति इसको कैसे जान पाते हैं?

3. **अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।**
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।।

है ब्रह्महस्ती आली वा बे-जवाल,
तो अध्यात्म अशिया की फ़ितरत का हाल ।
वो कुदरत हुई जिससे मखलूक सब,
वो है कर्म खल्क-ए जहाँ का सबब ।।

शब्दार्थ – अक्षरम्–न नष्ट होने वाला; परमम्–परम; अध्यात्मम्– अध्यात्म; उच्यते–कहलाता है; भूतभावोद्भवकरः–जड़-चेतन दोनों भूतों को उत्पन्न करने वाला; विसर्गः–सृष्टि व्यापार करना; कर्मसंज्ञितः–कर्म का नाम दिया जाता है ।

बेज़वाल–अक्षर; अशिया–पदार्थ; फ़ितरत–स्वभाव; कुदरत–प्रकृति; मखलूक–सृष्टि; ख़ल्क-ए जहाँ–लौकिक सृष्टि; सबब–कारण ।

भावार्थ – परम अक्षर तत्व 'ब्रह्म' है; उस ब्रह्म का 'स्व-भाव' के रूप में संसार के तत्त्वों में विद्यमान रहना 'अध्यात्म' कहलाता है; उस ब्रह्म का 'भूत-भाव' अर्थात् जड़-चेतन दोनों को उत्पन्न करने वाले सृष्टि-व्यापार करने को 'कर्म' का नाम दिया जाता है ।

4. **अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।**
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।।

अधीभूत फ़ानी वजूद-ए जहाँ,
पुरुष है अधीदेव रूह-ओ रवाँ ।
अधीयज्ञ सुन ऐ फ़खर-ए ऐहल-ए वजूद,
मैं खुद हूँ कि मेरी है तन में नमूद ।

शब्दार्थ – अधिभूतम्–भौतिकजगत्; क्षरः–निरंतर परिवर्तनशील; भावः–प्रकृति; पुरुषः–सूर्य, चन्द्र जैसे समस्त देवताओं सहित विराट रूप; च–और; अधिदैवतम्–अधिदैवत; अधियज्ञः–अधियज्ञ; अहम्–मैं; एव–ही; अत्र–इस, यहाँ; देहे–शरीर में; देहभृताम् वर–हे देहधारियों में श्रेष्ठ !

वज़ूद–कारण; रूह-ओ रवाँ–चेतन सत्ता; फ़खर–श्रेष्ठ; ऐहल-ए वज़ूद–प्राणियों में; नमूद–अस्तित्व (निवास) ।

भावार्थ – हे देह धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! निरतर परिवर्तनशील यह भौतिक प्रकृति भी अधिभूत कहलाती है । भगवान् का विराट रूप जिसमें सूर्य व चन्द्र जैसे सारे देवता शामिल हैं, अधिदैव कहलाते हैं । प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा अधियज्ञ कहलाता है ।

5. **अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।**
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।

जब इन्साँ जहाँ से गुजरता हुआ,
मेरी ही करे याद मरता हुआ ।
तो फिर इसमें शक का नहीं एहतमाल,
उसे मर के हासिल हो मेरा वसाल ।।

शब्दार्थ –अन्तकाले–अन्तकाल में; च–और; माम्–मुझको; एव–ही; स्मरन्–स्मरण करते-करते; मुक्तवा–त्याग करके; कलेवरम्–शरीर को; यः–जो; प्रयाति–जाता है; सः–वह; मद्भावम्–मेरे स्वरूप को; याति–प्राप्त करता है; अस्ति–है; अत्र–यहाँ, इसमें; संशयः–सन्देह ।

एहतमाल–गुँजाइश; हासिल–प्राप्त; वसाल–दर्शन (दीदार) ।

भावार्थ –अन्तकाल में मुझे ही स्मरण करते-करते जो भौतिक शरीर त्याग करता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त करता है–इसमें कोई सन्देह नहीं ।

6. **यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।**
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भवभावितः ।।

जब इन्साँ बदन को कहे ख़ैरबाद,
करे आखरी वक्त जिस शै की याद ।
तो अर्जुन उसी शै से वासल हो वो,
लगाई थी लौ जिससे हासिल हो वो ।

शब्दार्थ –यम्–जिस; यम्–जिस; वा अपि–भी; स्मरन्–स्मरण करता हुआ; भावम्–भावना को; त्यजति–छोड़ता है; अन्ते–अन्तकाल में; कलेवरम्–शरीर को; तम्–उस; तम्–उस; एव–ही; एति–प्राप्त होता है; कौन्तेय–हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन; सदा–सदा; तद्भावभावितः–उसी भावना के रंग में रंगा होने के कारण ।

ख़ैरबाद–विदाई; शै–पदार्थ; वासल–प्राप्त; हासिल–प्राप्त ।

भावार्थ –हे अर्जुन! जिस-जिस भावना को स्मरण करते हुए व्यक्ति अन्तकाल में भौतिक शरीर को छोड़ता है उस-उस भावना में रंगा होने के कारण वैसे ही शरीर को प्राप्त होता है ।

7. तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ।।

मुझे याद अर्जुन ब-हर रंग कर,
लिये जा मेरा नाम और जंग कर ।
फ़िदा मुझ पे कर दानिश-ओ दिल मदाम,
मेरा वस्ल पायेगा तू लाकलाम ।।

शब्दार्थ – तस्मात्–इसलिये; सर्वेषु–सब; कालेषु–समय में; माम्–मुझ को; अनुस्मर–स्मरण कर; युध्य–जीवन-संग्राम को कर; च–और; मयि–मुझमें; अर्पितमनोबुद्धिः–मन तथा बुद्धि को अर्पित कर देने वाला; माम्–मुझ को; एव–ही; एष्यसि–प्राप्त कर लेगा; असंशयम्–निस्संदेह ही ।

ब-हर रंग–सदा-सर्वदा; फ़िदा–न्योछावर; दानश–बुद्धि; दिल–मन; मदाम–निरन्तर; वस्ल–दर्शन; लाकलाम–निःसन्देह ।

भावार्थ – इसलिये हे अर्जुन! सब कालों में मुझे स्मरण करता रह और युद्ध भी कर । इस प्रकार मुझ में मन तथा बुद्धि अर्पित कर देने से तू निस्सन्देह मुझ को ही प्राप्त होगा ।

8. अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।

अगर योग की मश्क हो मुस्तकिल,
किसी ग़ैर का जब हो ख़्वाहाँ न दिल ।
हो पुरनूर आली पुरुष का ख्याल,
तो हासिल इसी से हो अर्जुन वसाल ।।

शब्दार्थ – अभ्यासयोगयुक्तेन–जो व्यक्ति 'अभ्यास-योग' से चित्त को एकाग्र कर कहीं दूसरी जगह भागने नहीं देता; चेतसा–चित्त से; नाऽन्यागामिना–अन्य और न जाने वाले; परमम्–परम; पुरुषम्–पुरुष को; दिव्यम्–दिव्य को; याति–प्राप्त कर लेता है; पार्थ–हे अर्जुन; अनुचिन्तयन्–निरन्तर चिन्तन करता हुआ ।

मश्क–अभ्यास; मुस्तकिल–निरन्तर; ग़ैर–अन्य; ख्वाहों–इच्छुक; पुरनूर–दिव्य; पुरुष–भगवान्; हासिल–प्राप्त; वसाल–दर्शन ।

भावार्थ – हे अर्जुन! जो व्यक्ति 'अभ्यास-योग' से चित्त को एकाग्र कर उसे कहीं दूसरी जगह भागने नहीं देता वह निरन्तर चिन्तन करने से परमेश्वर को पा जाता है ।

9. **कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।**
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।

जो करता है याद-ए खुदाय-ए अलीम,
पनाह-ए जहाँ बादशाह-ए कदीम ।
जो सूरज-सा पुरनूर ज़ुलमत से दूर,
खफ़ी से खफ़ी मादराय-ए शऊर ।।

शब्दार्थ – कविम्–सर्वज्ञ द्रष्टा को; पुराणम्–पुरातन; अनुशासितारम्–नियन्ता; अणोः–अणु से; अणीयांसम्–अधिक छोटा, अति सूक्ष्म; अनुस्मरेत्–स्मरण करे; यः–जो; सर्वस्य–सबका; धातारम्–पालन करे हारा; अचिन्तरूपम्–अचिन्त्य स्वरूप वाला; आदित्यवर्णम्–सूर्य के समान प्रकाशमान; तमसः–अंधकार से; परस्तात्–दूर ।

खुदाय-ए अलीम–सनातन, अनादि काल से; पनाह-ए जहाँ–सर्व आधार; बादशाह-ए कदीम–पुराने अनुशासन करने वाले; पुरनूर–ज्योर्तिमय; ज़ुलमत–अन्धकार; खफ़ी से खफ़ी–सूक्ष्म से सूक्ष्म; मादराय-ए शऊर–अचिन्त्यस्वरूप ।

भावार्थ – जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले अचिन्त्यस्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वर का स्मरण करता है ।

10. **प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।**
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।

जो भक्ति करे योग से मुस्तकिल,
जो मरने पे रखता है मजबूत दिल ।
प्राण अपने दो अवरुओं में ज़माये,
तो पुरनूर आली पुरुष को वो पाये ।।

शब्दार्थ – प्रयाणकाले–अन्तकाल में; मनसा–मन से ध्यान करता है; अचलेन–अचल; भक्त्या–भक्ति से; युक्तः–आप्लावित होकर; योगबलेन–योगबल से; च–और; एव–ही; भ्रुवोः–भृकुटी के; मध्ये–बीच में; प्राणम्–प्राण को; आवेश्य–स्थापित करके; सम्यक्–अच्छी तरह से; सः–वह; तम्–उस; परम्–परम; पुरुषम्–परमेश्वर को; उपैति–प्राप्त करता है; दिव्यम्–दिव्य को ।

मुस्तकिल–निरन्तर; अबरुओं–भ्रुवों; पुरनुर–दिव्य; पुरुष–पुरुषोत्तम (भगवान्) ।

भावार्थ – वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य रूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है ।

11. यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।।

सुन अब मुख़्तसर मुझसे वो राह-ए योग,
मुजर्रद रहें शौक में जिसके लोग ।
जहाँ बे-गर्ज़ एहल-ए संन्यास जायें,
जिसे वेद-दां ग़ैर-फ़ानी बतायें ।।

शब्दार्थ – यत्–जिसे; अक्षरम्–अक्षर ओम् से; वेदविदः–वेदों के ज्ञाता; वदन्ति–कहते हैं; विशन्ति–प्रवेश करते हैं; यत्–जिस में; यतयः–यतिजन; वीतरागाः–आसक्ति से रहित; यद्–जिसको; इच्छन्तः–इच्छा करते हुए; ब्रह्मचर्यम्–ब्रह्मचर्य का; चरन्ति–पालन करते हैं; तत्–उस; ते–तेरे लिये; पदम्–पद को; संग्रहेण–संक्षेप से; प्रवक्ष्ये–बताऊँगा ।

मुख़्तसर–संक्षिप्त; मुजर्रद–ब्रह्मचर्य; बे-गर्ज़–निष्कामी; एहल-ए संन्यास–यति, वेद-दाँ–वेदवेत्ता; ग़ैर-फ़ानी– अक्षर ।

भावार्थ – वेद जानने वाले जिसे 'अक्षर' नाम से पुकारते हैं, वीतराग यति लोग जिसमें प्रवेश करते हैं, ब्रह्मचारी लोग जिसकी प्राप्ति की इच्छा

से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उस 'ओंकार' पद का मैं तेरे लिये संक्षेप से वर्णन करूँगा ।

12. **सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।**
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ।।

बदन के अगर बन्द सब दर करे,
जो मन है उसे रूह के अन्दर करे ।
जमे इस तरह योग से उसका ध्यान,
कि इन्साँ के सिर में रहें उसके प्राण ।।

शब्दार्थ —सर्वद्वाराणि—सब द्वारों को; संयम्य—संयम में रख कर; हृदि—हृदय में; निरुध्य—रोक कर; च—और; मूर्ध्नि—मस्तक में; आधाय—स्थिर करके; आत्मनः—अपने; प्राणम्—प्राण को; आस्थितः—समाधि में बैठा हुआ; योगधारणाम्—योग को धारण करके ।

भावार्थ —इन्द्रियों के सब द्वारों को संयम में रखकर, मन को हृदय में रोक कर, प्राण को अपने मूर्धा (मस्तक) में स्थिर करके, योग द्वारा समाधि में बैठकर ।

13. **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।**
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।

जिसे ॐ कहते हैं नाम-ए ख़ुदा,
वो इक रुकन का हर्फ़ जपता हुआ ।
मेरे ध्यान में जिसका हो इख़्तताम,
मिले उसको मरते ही आली मकाम ।।

शब्दार्थ —ओम्—ओम्; इति—ऐसा; एकाक्षरम्—एक अक्षर रूप; ब्रह्म—ब्रह्म का; व्याहरन्—उच्चारण करता हुआ; माम्—मुझ को; अनुस्मरन्—स्मरण करता हुआ; यः—जो; प्रयाति—प्रयाण जाता है; त्यजन्—छोड़ता हुआ; देहम्—देह को; सः—वह; याति—प्राप्त करता है; परमाम्—श्रेष्ठ; गतिम्—गति को ।

हर्फ़—अक्षर; इख़्तताम—अन्त; आली मकाम—परमधाम ।

भावार्थ – ओ३म् इस एक अक्षर रूपी ब्रह्म का उच्चारण और चिन्तन करता हुआ जो देह का त्याग करता हुआ संसार से जाता है वह परम गति को प्राप्त करता है ।

14. अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।।

सदा मेरा पेहम जिसे ध्यान है,
तो मिलना मेरा उसको आसान है ।
मुझे दिल से अर्जुन भुलाता नहीं,
किसी ग़ैर से दिल लगाता नहीं ।।

शब्दार्थ – अनन्यचेताः–अन्य में चित्त को न डालने वाला; सततम्–निरन्तर; यः–जो; माम्–मुझ को; स्मरति–स्मरण करता है; नित्यशः–नियमित रूप से; तस्य–उस; अहम्–मैं; सुलभः–सुलभ हूँ; पार्थ–हे अर्जुन! नित्ययुक्तस्य–सदा मुझ में रमे हुए का; योगिनः–योगी का ।

पेहम–निरन्तर, ग़ैर–अन्य ।

भावार्थ – हे अर्जुन! जो व्यक्ति 'अनन्यचित्त' होकर, अन्य किसी वस्तु में चित्त को न डालकर, निरन्तर मेरा ही स्मरण करता है, ऐसे नित्ययुक्त योगी के लिये मैं सुलभ हूँ क्योंकि वह मेरे में प्रवृत्त है ।

15. मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।।

महा-आत्मा मुझ से पा कर वसाल,
रहें पुरसकूँ ले के औज़-ए कमाल ।
हलूल-ओ तनासख न दौर-ए हैयात,
फ़ना-ओ मुसीबत से पायें निजात ।।

शब्दार्थ – माम–मुझ को; उपेत्य–प्राप्त करके; दुःखालयम्–दुःख के घर; अशाश्वतम्–क्षणिक; आप्नुवन्ति–प्राप्त करते; महात्मानः–महात्मा लोग; संसिद्धिम्– सिद्धि को; परमाम्–परम; गताः–प्राप्त हुए ।

वसाल—दर्शन; पुरसकूँ—प्रशान्त; औज़-ए कमाल—परम सिद्धि; तनासख—आवागमन; दौर-ए हैयात—पुनर्जन्म; फ़ना—मृत्यु; मुसीबत—दुःख; निजात—निवृत्ति।

भावार्थ —मुझ तक पहुँच जाने के बाद, परम सिद्धि को प्राप्त हो चुके महात्मा लोग, दुःखों के घर और अस्थायी जन्म को फिर से धारण नहीं करते (पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं)।

16. **आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

कि ब्रह्मा की दुनियाँ तक ऐहल-ए जहाँ,
तनासख़ के चक्कर में हैं बे-गुमाँ।
मगर जिसको हासिल हो मुझ से वसाल,
बरी है तनासख से कुन्ती के लाल।।

शब्दार्थ —आब्रह्मभुवनात्—ब्रह्मलोक से लेकर; लोकाः—सारे लोक; पुनरावर्तिनः—जिनमें पुनः पुनः आगमन होता रहता है; माम्—मुझ को; उपेत्य—पाकर; तु—परन्तु; कौन्तेय—हे अर्जुन! विद्यते—होता है।

ऐहल-ए जहाँ—संसारी जीव; तनासख—आवागमन; बेगुमाँ—निःसन्देह; वसाल—दर्शन; बरी—रहित।

भावार्थ —हे अर्जुन! ब्रह्म-लोक से लेकर जितने लोक हैं वहाँ से फिर पुनर्जन्म की तरह लौटना होता है, परन्तु मेरे पास पहुँच जाने के बाद फिर से जन्म नहीं लेना पड़ता।

17. **सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।**
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।

जो हैं वाकफ़-ए राज़-ए लील-ओ निहार,
करें वक्त ब्रह्मा का ऐसे शुमार।
हज़ार अपने युग हों तो एक उसका दिन,
हज़ार अपने युग की फिर इक रात गिन।।

शब्दार्थ – सहस्रयुगपर्यन्तम्–एक हज़ार युगों तक; अहः–दिन; यत्–जो; ब्रह्मणः–ब्रह्म का; विदुः–वे जानते हैं; रात्रिम्–रात्रि को; युगसहस्रान्ताम्–हज़ारों युगों वाली; ते–वे; अहोरात्रविदः–दिन रात को जानने वाले; जनाः–लोग ।

वाकफ़–जानकार; राज़–भेद; लील-ओ निहार–दिन-रात; शुमार–गिनती ।

भावार्थ – जो दिन-रात की परिभाषा में बात करते हैं वे जानते हैं कि ब्रह्मा का एक दिन एक हज़ार युगों का होता है, और उसकी रात्रि भी एक हज़ार युग लम्बी होती है ।

18. अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।

हो ब्रह्मा के दिन जब सहर की नमूद,
तो बातन से ज़ाहिर हो बज़्म-ए शहूद ।
मगर जिस घड़ी आये ब्रह्मा की रात,
तो बातन में छिप जाये कुल कायनात ।।

शब्दार्थ – अव्यक्तात्–व्यक्त से; व्यक्तयः–व्यक्त पदार्थ; सर्वाः–सारे; प्रभवन्ति–प्रकट होते हैं; अहरागमे–दिन होने पर; रात्र्यागमे–रात्रि आने पर; प्रलीयन्ते–लीन हो जाते हैं; तत्र–वहाँ; एव–ही; अव्यक्त-संज्ञके–कहे जाने वाले ।

सहर–प्रातः; नमूद–प्रगट; बातन–अव्यक्त; ज़ाहिर–व्यक्त; बज़्म-ए शहूद–सृष्टि; कायनात–सृष्टि ।

भावार्थ – ब्रह्मा के दिन के शुभारम्भ में सारे जीव अव्यक्त में व्यक्त होते हैं और फिर जब रात अर्थात् प्रलय काल आती है तो वे पुनः अव्यक्त में विलीन हो जाते हैं ।

19. भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।

यह मख़लूक पैदा जो है बार-बार,
हो गुम रात पड़ने पे बे-इख़्त्यार ।
सुन अर्जुन जो ब्रह्मा का दिन हो अयाँ,
हो फिर मौज-ए हस्ती का दरिया रवाँ ।।

शब्दार्थ – भूतग्रामः–समस्त जीवों का समूह; सः–वह; एव–ही; अयम्–यह; भूत्वा-भूत्वा–बारम्बार जन्म लेकर; प्रलीयते–विलीन हो जाता है; रात्र्यागमे–ब्रह्मा की रात्रि के आगमन पर; अवशः–विवश सा; पार्थ–हे अर्जुन ! प्रभवति–प्रकट होता है; अहरागमे–ब्रह्मा के दिन के आने पर ।

मखलूक–प्राणी; बे-इखत्यार–बाध्य होकर; अयाँ–प्रगट; मौज-ए हस्ती–प्राणियों की उत्पत्ति ।

भावार्थ – जब जब ब्रह्मा का दिन आता है तो सारे जीव प्रादुर्भूत होते हैं और ब्रह्मा की रात अर्थात् प्रलय होते ही असहायवत् विलीन हो जाते हैं ।

20. **परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।**
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।

परे ग़ैब से भी है इक ज़ात-ए ग़ैब,
वो हस्ती फ़ना का नहीं जिसमें ऐब ।
किसी की न कुछ बात बाकी रहे,
फ़कत इक वही ज़ात बाकी रहे ।।

शब्दार्थ – परः–परे; तस्मात्–उससे; तु–परन्तु; भावः–प्रकृति; अन्यः–और; अव्यक्तः–अव्यक्त (अप्रकट) ब्रह्म; अव्यक्तात्–अव्यक्त (प्रकृति) से; यः–जो; सः–वह; सर्वेषु–समस्त; भूतेषु–जीवों के; नश्यत्सु–नाश होने पर भी; विनश्यति– नष्ट होता है ।

ग़ैब–अव्यक्त; फ़ना–नाश; ऐब–अवगुण; फ़कत–केवलमात्र ।

भावार्थ – परन्तु इस अव्यक्त से भी परे एक और सनातन सत्ता है जो सब भूतों के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होती ।

21. **अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।**
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

वो हस्ती जो बातिन है और बे-ज़वाल,
करें उनकी मंजिल को आला ख्याल ।
पहुँच कर जहाँ से न लौटें मदाम,
वूही है वूही मेरा आली मकाम ।।

शब्दार्थ —अव्यक्त—अप्रकट; अक्षरः—अविनाशी; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा जाता है; तम्—उसको; आहुः—कहते हैं; परमाम्—परम; गतिम्—गति; यम्—जिसको; प्राप्य—प्राप्त करके; निवर्तन्ते—लौटते हैं; तद्—वह; धाम—स्थान; परमम्—सर्वोच्च; मम—मेरा ।

बातिन—अव्यक्त; बे-ज़वाल—अक्षर; मन्ज़ल—परमगति; मदाम—सदा; मकाम—परमधाम ।

भावार्थ —वह 'अव्यक्त' 'अक्षर' कहलाता है, अविनाशी कहलाता है, उसी को परमगति कहते हैं, सर्वोच्च अवस्था कहते हैं । इस अवस्था को प्राप्त कर फिर लौटना नहीं होता, वही मेरा परमधाम है ।

22. **पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।**
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।।

यह दुनियाँ है जिसकी बसाई हुई,
हर इक शय है जिसमें समाई हुई ।
अगर चाहे तू उस ख़ुदा का वसाल,
रख उसकी मुहब्बत का दिल में ख़्याल ।।

शब्दार्थ —सः—वह; परः—परम; पार्थ—हे अर्जुन; भक्त्या—भक्ति से; लभ्यः—प्राप्त किया जा सकता है; तु—और; अनन्यया—अनन्य; यस्य—जिसके; अन्तःस्थानि—अन्दर ही स्थित; भूतानि—सारा जगत; येन—जिससे; सर्वम्—सब; इदम्—यह; ततम्—व्याप्त है ।

वसाल—दर्शन ।

भावार्थ —हे अर्जुन! वह परम पुरुष जिसमें सब भूत निवास करते हैं और जिससे यह सारा संसार व्याप्त है, अनन्य-भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

23. यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।।

सुन ऐ नस्ल-ए भारत के सरताज सुन,
बताता हूँ अब वक्त के तुझ को गुन।
कि कब मर के लौट आयें योगी यहीं,
वो कब मर के कालिब बदलते नहीं।।

शब्दार्थ —यत्र—जिस; काले—काल में; तु—और; अनावृत्तिम्—जन्म-मरण का चक्र; च—और; एव—ही; योगिनः—योगि-जन; प्रयाताः—इस संसार को छोड़ने के बाद; यान्ति—प्राप्त करते हैं; तम्—उस; कालम्—काल को; वक्ष्यामि—कहूँगा; भरतर्षभ—हे भरत-कुल में श्रेष्ठ।
नस्ल-ए भारत—भारत की सन्तान; कालिब—शरीर।

भावार्थ —हे भरत-कुल में श्रेष्ठ अर्जुन! जिस काल में संसार से चल पड़ने के बाद योगी लोग फिर इस संसार में लौटकर नहीं आते और जिस काल में संसार से चल पड़ने के बाद वे लौट आते हैं—उस काल का मैं अब वर्णन करूँगा।

24. अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।

अगर दिन हो या मौसम-ए नार-ओ नूर,
उजाले की रातें हों माह का ज़हूर।
हो शश माह सूरज का दौर-ए शुमाल,
मरे उनमें आरफ़ तो पाये वसाल।।

शब्दार्थ —अहः—दिन; शुक्लः—शुक्ल पक्ष; षण्मासाः—छः महीने; उत्तरायणम्—उत्तरायण; तत्र—वहाँ; प्रयाताः—मरने वाले; गच्छन्ति—जाते हैं; ब्रह्म—ब्रह्म को; ब्रह्मविदः—ब्रह्मज्ञानी; जनाः—लोग।

मौसम-ए नार-ओ नूर—शुक्ल पक्ष; ज़हूर—प्रगट; शश—छः , दौर-ए शुमाल—उत्तरायण; आरफ़—ब्रह्मज्ञानी ।

भावार्थ —अग्नि प्रज्वलित हो रही हो, उसका प्रकाश फैल रहा हो, शुक्ल पक्ष हो, उत्तरायण के छह महीने चल रहे हों, उस समय इस संसार से भौतिक शरीर का त्याग करने वाले ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म तक पहुँच जाते हैं ।

25. **धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।**
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।।

अन्धेरा हो पाख़ और धुन्धलका हो खूब,
हो शश-माह सूरज का दौर-ए जनूब ।
कि हो रात का वक्त जब जान जाये,
तो योगी यहीं चाँद से लौट आये ।।

शब्दार्थ —धूमः—धुआँ; कृष्णः—कृष्ण पक्ष; षण्मासाः—छः महीने; दक्षिणायनम्—दक्षिणायन; तत्र—वहाँ; चान्द्रमसम्—चन्द्रमा की; ज्योतिः—प्रकाश को; प्राप्य—प्राप्त करके; निवर्तते—वापस आता है ।

दौर-ए ज़नूब—दक्षिणायन ।

भावार्थ —अग्नि में धुआँ उठ रहा हो । रात्रि का समय हो, कृष्ण पक्ष हो, दक्षिणायन के छह महीने चल रहे हों, उस समय संसार से प्रस्थान करने वाला योगी चन्द्रमा की ज्योति प्राप्त करके वापस आता है ।

26. **शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।**
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ।।

अन्धेरा कभी हो उजाला कभी,
सदा से जगत् के हैं रस्ते यही ।
उजाले में जब जाये वापस न आये,
अन्धेरे में जाता हुआ लौट आये ।।

शब्दार्थ —शुक्लकृष्णे—शुक्ल अर्थात् प्रकाशमान, कृष्ण अर्थात् अंधकार; गती—दो मार्ग; हि—क्योंकि; एते—ये दो; शाश्वते—सनातन;

मते—माने गये हैं; एकया—एक मार्ग से; याति—जाता है; अनावृत्तिम्—जिसमें लौटना नहीं होता; अन्यया—दूसरे से; आवर्तते—लौट आता है या आवागमन प्रारम्भ हो जाता है; पुनः—फिर ।

भावार्थ — जगत् के शुक्ल अर्थात् प्रकाशमान तथा कृष्ण अर्थात् अंधकारमय—ये दो मार्ग सदा से माने गये हैं । इनमें से एक मार्ग से जाने वाला लौटकर नहीं आता, दूसरे मार्ग से जाने वाला वापस लौट आता है अर्थात् जीवन व मृत्यु को प्राप्त होता है ।

27. **नैते पार्थ सृती जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।**
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।।

जो इन रास्तों से न अन्जान हो,
वो योगी परेशाँ न हैरान हो ।
सुन अर्जुन है जब तक तेरे दम में दम,
तू रह योग में अपने साबत कदम ।।

शब्दार्थ — एते—ये दो; पार्थ—हे अर्जुन; सृती—दो मार्ग; जानन्—जानता हुआ; मुह्यति—मोहग्रस्त होता है; कश्चन—कोई; तस्मात्—अतः; सर्वेषु—सब; कालेषु—कालों में; योगयुक्तः—योग में जुटा हुआ; भव—हो ।

परेशाँ—चिन्तित; साबत—दृढ़ निश्चयी ।

भावार्थ — हे अर्जुन ! जो योगी इन दोनों मार्गों को जान जाता है वह कभी मोह में, भ्रम में नहीं पड़ता, इसलिये हे अर्जुन ! तू सब कालों में योग में जुटा रह अर्थात् निरंतर मेरी प्राप्ति के लिये साधन करने वाला हो ।

28. **वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।**
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ।।

मिले वेद के पाठ करने से पुन,
हैं बेशक बहुत दान यज्ञ तप के गुण ।

मगर उनसे बाला है योगी की बात,

अज़ल से वो पाये मकाम-ए निजात ।।

शब्दार्थ – वेदेषु–वेदाध्ययन; यज्ञेषु–यज्ञों के विधानों में; तपसु–विभिन्न प्रकार की तपस्याएँ करने में; च–और; एव–ही; दानेषु–दान देने में; यत्–जो; पुण्यफलम्–पुण्य का फल; प्रदिष्टम्–सूचित है; अत्येति–पार करता है; तत्–उस; सर्वम्–सबको; इदम्–इसको; विदित्वा–जानकर; स्थानम्–स्थान को; उपैति–प्राप्त करता है; च–और; आद्यम्–पहला ।

बाला–श्रेष्ठ; अज़ल–आद से; मकाम-ए निज़ात–परम सिद्धि ।

भावार्थ – यह सब जान लेने के बाद वेदों के अध्ययन से, यज्ञों को करने से, तपों को तपने से, दान को देने से जो पुण्य फल प्राप्त होने की बात कही जाती है, योगी उस सब को पार कर जाता है, और सबसे पहला और परम स्थान प्राप्त कर लेता है ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में "मैं" का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व "परमात्मा" से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को "मैं" के नाम से जाना जाता है ।

नौवाँ अध्याय

सारा संसार ब्रह्म से ही व्याप्त है। सभी प्राणी उसी में स्थित हैं जैसे सब जगह घूमता हुआ वायु आकाश में रहता है वैसे सारे प्राणी परमात्मा में रहते हैं। प्रलय के समय सभी प्राणी परमात्मा की प्रकृति में लीन हो जाते हैं और कल्प के समय फिर भगवान् उनको विभिन्न रूपों में उत्पन्न कर देता है। यह सब होते हुये भी वह कर्मों के बंधन में बंधा हुआ नहीं है। वही प्रकृति को प्रेरित करके बार-बार जगत् की रचना करवाता है। अज्ञानी ईश्वर के महत्व को न जानकर उसका अनादर करते रहते हैं, परन्तु ज्ञानी व्यक्ति सबसे चित हटाकर उसकी उपासना करते हैं। कुछ लोग जीव एवं ब्रह्म में अभेद मानकर उपासना करते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग अपने को दास व परमात्मा को स्वामी समझ कर उसकी उपासना करते हैं।

इस संसार में जो भी दिखाई देता है सब ईश्वर का रूप ही है। यज्ञ आदि का कर्मफल स्वर्ग की प्राप्ति है। परन्तु स्वर्ग का सुख भोगने के उपरांत फिर जीव को मनुष्य लोक में आना पड़ता है। इस प्रकार वेदों के द्वारा बतलाये हुये कर्मों को करने वाले इस संसार में बार-बार आते रहते हैं। उनको सुख-दुःख के चक्र में फँसा ही रहना पड़ता है। प्रभु सब व्यक्तियों को समदृष्टि से देखता है। दुष्ट भी यदि भक्ति करता है तो वह भी शीघ्र सज्जन बनकर प्रभु की शाश्वत शांति उपलब्ध करता हैं।

1. **इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।**
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।

तू अर्जुन नहीं ऐब-जू नुक्ताचीं,
कर अब मुझ से राज़-ए खफ़ी दिलनशीं।
मिलेगा यहीं इल्म-ओ उरफ़ाँ का नूर,
इसे जान जाय तो हों पाप दूर।।

शब्दार्थ– इदम्–इस; तु–क्योंकि; ते–तुझे; गुह्यतमम्–गुह्य से भी गुह्य; प्रवक्ष्यामि–बतलाऊँगा; अनसूयवे–दोष-दृष्टि से रहित तुझ को; ज्ञानम्–ज्ञान को; विज्ञानसहितम्–विज्ञान के सहित;

यत्—जिसको; ज्ञात्वा—जान कर; मोक्ष्यसे—मुक्ति प्राप्त करेगा; अशुभात्—अशुभ से।

ऐब-जू—दोष निकालने वाला; नुक्ताचीं—विवादी; राज़-ए ख़फ़ी—गुह्यज्ञान; दिलनशीं—समझना; इल्म—ज्ञान; उरफ़ाँ—विज्ञान; नूर—ज्योति।

भावार्थ —मैं तुझे, क्योंकि तू दोष-दृष्टि से रहित है, इसलिये गुह्य से भी गुह्य विज्ञान-सहित बतलाता हूँ, जिसे जानकर तुम संसार के सारे दुःखों से मुक्त हो जाओगे।

2. **राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।**
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।

यह इल्म-ए शही है, यह राज़-ए शही,
करे पाक हर शै से बढ़कर यही।
अयाँ ख़ुद-बख़ुद हो कि आसाँ है यह,
फ़ना से बरी ऐन ईसाँ है यह।।

शब्दार्थ —राजविद्या—राजविद्या; राजगुह्यम्—गुह्यविद्याओं में अत्यन्त गुह्य; पवित्रम्—पवित्र विद्या; इदम्—यह; उत्तमम्—अत्युत्तम विद्या; प्रत्यक्षरावगमम्—प्रत्यक्ष फल देने वाली; धर्म्यम्—धर्म के अनुकूल; सुसुखम्—सुगम, आसान; कर्तुम्—साधन करने में; अव्ययम्—अविनाशी।

इल्म-ए शही—राजविद्या, राज़-ए शही—राजगुह्य, पाक—पवित्र; अयाँ—प्रगट; फ़ना—विनाश; बरी—रहित; ऐन—बिल्कुल; ईयाँ—धर्म।

भावार्थ —यह विद्याओं में राजविद्या है, और गुह्य विद्याओं में अत्यन्त गुह्य विद्या है। यह पवित्र विद्या है, अति उत्तम विद्या है प्रत्यक्ष फल देने वाली विद्या है। धर्म के अनुकूल विद्या है, साधन करने में बड़ी सुगम विद्या है, अविनाशी विद्या है।

3. **अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।**
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।।

जो इस धर्म पर दिल लगाते नहीं,
वो अर्जुन कभी मुझको पाते नहीं ।
न वासल हों मुझ से वो मुझ तक न आयें,
जहान-ए फ़नी की तरफ लौट जायें ।।

शब्दार्थ – अश्रद्दधानाः–श्रद्धाविहीन; पुरुषाः–पुरुष; धर्मस्य–धर्म का; अस्य–इसका; परन्तप–हे परम तपस्वी; अप्राप्य–न प्राप्त करके; माम्–मुझे; निवर्तन्ते–लौटते हैं; मृत्युसंसारवर्त्मनि– मृत्युमय संसार के मार्ग में ।

वासल–प्राप्त; जहान-ए फ़ना–मृत्युलोक ।

भावार्थ – हे परम तपस्वी अर्जुन ! यह रहस्य एक ऐसा धर्म है, जिसे श्रद्धा न रखने वाले पुरुष नहीं पा सकते, और उसे न पा सकने के कारण मृत्युमय संसार के मार्ग में बार-बार लौट आते हैं ।

4. **मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।**
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।।

खफ़ी से खफ़ी है मेरी हस्त-ओ बूद,
मगर है मुझी से जहाँ की नमूद ।
मुझी में है मखलूक सारी मकीं,
मगर मैं मकीं खुद किसी में नहीं ।।

शब्दार्थ – मया–मैंने; ततम्–व्याप्त किया हुआ है; इदं–यह; सर्वम्–सारा; अव्यक्तमूर्तिना–अव्यक्त रूप वाले ने; मत्स्थानि–मुझमें स्थित; सर्वभूतानि–सारे प्राणी व पंच भूत; च–और; अहम्–मैं; तेषु–उनमें; अवस्थितः–स्थित ।

ख़फ़ी–प्राप्त; जहान-ओ बूद–पता; नमूद–प्रगट; मखलूक–प्राणी; मकीं–स्थित ।

भावार्थ– इस सारे संसार को मैंने अपने अव्यक्त रूप द्वारा व्याप्त किया हुआ है । मुझमें सब प्राणी स्थित हैं, निवास करते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं हूँ, मैं उनमें निवास नहीं करता ।

5. **न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।**
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।।

न लोगों में हूँ मैं न मुझ में है लोग,
ज़रा देखना यह मेरा राज़ योग ।
मेरी आत्मा बायस-ए खास-ओ आम,
नहीं मेरा लेकिन किसी में क्याम ।।

शब्दार्थ —च—और; मत्स्थानि—मुझ में स्थित; भूतानि—सारी सृष्टि; पश्य—देख; योगम्—योग सामर्थ्य; ऐश्वरम्—ईश्वरीय; भूतभृत्—प्राणियों का भरण-पोषण करने वाला; च—और; भूतस्थ—भूतों में समाया हुआ; मम—मेरा; भूतभावनः—सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाला ।

बायस—कारण; ख़ास-ओ आम—सब के लिये; क्याम—निवास ।

भावार्थ — (यद्यपि सब प्राणी मुझ में स्थित हैं) तो भी सब प्राणी मुझ में स्थित नहीं हैं, देखो यह कैसी मेरी करनी है, कैसा योग-सामर्थ्य है । मेरा आत्मा सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है, सब प्राणियों का भरण-पोषण करने वाला है परन्तु फिर भी मैं उनमें नहीं हूँ ।

6. **यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।**
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।।

हवा गो चले ज़ोर से सर-बसर,
इधर से उधर या उधर से इधर ।
वो आकाश से जाये बाहर कहाँ,
समझ लो यूंही मेरे अन्दर जहाँ ।।

शब्दार्थ —यथा—जिसप्रकार; आकाशस्थितः—आकाश में स्थित; नित्यम्—सदा; सर्वत्रगः—सब जगह जाने वाला; महान्—प्रचण्ड; तथा—उसी प्रकार; सर्वाणि—सारे; भूतानि—प्राणी; मत्स्थानि—मेरे में स्थित; इति—इस प्रकार से; उपधारय—समझ ले ।

सर-बसर—निरंतर ।

भावार्थ —जिस प्रकार (अपरिवर्तशील) आकाश में (परिवर्तनशील) प्रचण्ड वायु सदा स्थित रहती है, उसी प्रकार ये सब (परिवर्तनशील) प्राणी मुझ (अपरिवर्तनशील ब्रह्म) में निवास करते हैं—यह समझ लें ।

7. सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।।

जब इक दौर हो ख़त्म कुन्ती के लाल,
तो हो मेरी माया में सब का वसाल ।
नये दौर की हो जो फिर से नमूद,
करूँ मैं ही पैदा सब ऐहल-ए वजूद ।।

शब्दार्थ –सर्वभूतानि–सब प्राणी; कौन्तेय–हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन; प्रकृतिम्–प्रकृति को; यान्ति–प्राप्त करते हैं; मामिकाम्–मेरी; कल्प-क्षये–सृष्टि के चक्र की समाप्ति पर; तानि–वे (प्राणी); कल्पादौ–सृष्टि चक्र के प्रारम्भ में; विसृजामि–उत्पन्न करता हूँ; अहम्–मैं ।

दौर–कल्प; वसाल–लय; नमूद–प्रगट होना; ऐहल-ए वजूद–प्राणी ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! सृष्टि के चक्र की समाप्ति पर सब भूत-जड़-चेतन–मेरी प्रकृति में समा जाते हैं और सृष्टि-चक्र के अगले चक्र के आरम्भ होने पर मैं ही फिर उनका सर्जन कर देता हूँ ।

8. प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।।

उसी अपनी माया से लेता हूँ काम,
मैं करता हूँ जान्दार पैदा तमाम ।
चलें जौक-दर-जौक सब बार-बार,
कि माया के हाथों हैं बे-इख़्त्यार ।।

शब्दार्थ –प्रकृतिम्–प्रकृति को, स्वाम्–अपनी; अवष्टभ्य–लेकर, स्वीकार कर; विसृजामि–उत्पन्न करता हूँ; भूतग्रामम्–भूतों के समुदाय को; इमम्–इस; कृत्स्नम्–पूर्णतः; अवशम्–परतन्त्र; प्रकृतेः–प्रकृति के; वशात्–वश में ।

जौक-दर-जौक–समूह; बे-इख़्त्यार–विवश ।

भावार्थ – मैं अपनी 'प्रकृति' को, अपनी माया को हाथ में लेकर, 'प्रकृति' के, अपने स्वभाव के वश में रहने वाले परतंत्र सम्पूर्ण भूतों के समुदाय को बार-बार उत्पन्न करता हूँ ।

9. **न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।**
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।।

सुन ऐ अर्जुन, ऐ साहिब-ए सीम-ओ ज़र,
नहीं ऐसे कर्मों का मुझ पर असर ।
कि रहता हूँ मैं बे-गरज़ सर-फ़राज़,
इन अफ़्फ़ाल-ओ आमाल से बे-नियाज़ ।।

शब्दार्थ – च–और; माम्–मुझको; तानि–वे; कर्माणि–कर्म; निबध्नन्ति–बन्धन में डालते हैं; धनंजय–हे अर्जुन; उदासीनवद्–उदासीन के समान; आसीनम्–स्थित हुए; असक्तम्–आसक्ति से रहित; तेषु–उनमें; कर्मसु–कर्मों में ।

साहिब-ए सीम-ओ जर-धनंजय (अर्जुन), बे-गरज़–बेलाग, सर-फ़राज़– निरासक्त; अफ़्फ़ाल-ओ आमाल–कर्म; बे-नियाज–तटस्थ ।

भावार्थ – हे अर्जुन! ये सब कर्म मुझे बन्धन में नहीं डालते क्योंकि मैं उन कर्मों में उदासीन के समान आसक्ति को छोड़कर बरतता हूँ ।

10. **मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।**
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।

मैं नाज़र हूँ इसका यह करती है काम,
हों माया से सैयार-ओ साबित तमाम ।
समझ ले इसी तरह कुन्ती के लाल,
है चक्कर ही चक्कर में दुनियाँ का हाल ।।

शब्दार्थ – मया–मेरे द्वारा; अध्यक्षेण–देख-रेख करने वाले; सूयते–उत्पन्न करती है; सचराचरम्–जड़ और चेतन पदार्थों के साथ; हेतुना–कारण से; अनेन–इससे; कौन्तेय–हे कुन्ती के पुत्र! अर्जुन; विपरिवर्तते–क्रियाशील है ।

नाज़र—दृष्टा; सैयार—चेतन; साबित—जड़ ।

भावार्थ —हे अर्जुन ! मेरी देख-रेख में यह प्रकृति इस चर तथा अचर जगत् को उत्पन्न करती है । इस कारण यह सारा संसार का चक्र घूम रहा है ।

11. **अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।**
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।

जब आता है इन्साँ का पहने लिबास,
नहीं करते परवाह मेरी न-शनास ।
मेरी शार-ए आली नहीं जानते,
शहनशाह मुझ को नहीं मानते ।।

शब्दार्थ —अवजानन्ति—उपहास करते हैं; माम्—मुझको; मूढाः—मूर्ख व्यक्ति; मानुषीम्—मनुष्य की; तनुम्—शरीर को; आश्रितम्—मानते हुये; परम्—परम, श्रेष्ठ; भावम्—सत्ता को; अजानन्तः—न जानते हुए; मम—मेरा; भूतमहेश्वरम्—सब प्राणियों के महेश्वर ।
न शनास—मूर्ख; शान-ए आली—महेश्वर रूप ।

भावार्थ —जब मैं मानव रूप में अवतरित होता हूँ, तो मूर्ख मेरा उपहास करते हैं । वे मुझे परमात्मा के दिव्य स्वभाव को नहीं जानते हैं ।

12. **मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।**
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।

अबस हैं उमीदें अबस हैं अमल,
अबस इल्म उनका समझ में खलल ।
तबीयत में धोखा भी वहशत भी है,
भरी शतीयनत भी खबासत भी है ।।

शब्दार्थ —मोघाशाः—निष्फल आशा; मोघकर्माणः—जिनके कर्म व्यर्थ हैं; मोघज्ञानाः—जिनका ज्ञान व्यर्थ है; विचेतसः—अज्ञानी जन; राक्षसीम्—राक्षसों की; आसुरीम्—असुरों की; च—और; एव—ही; प्रकृतिम्—प्रकृति को; मोहिनीम्—मोह पैदा करने वाली; श्रिताः—आश्रय लिये हुए ।

अबस—व्यर्थ; उमीदें—आशायें; अमल—कर्म-समूह; इल्म—जानकारी; समझ—बुद्धि; खलल—अस्थिरता; तबीयत—स्वभाव; वहशत—राक्षसीभाव; शतीनत—आसुरी; ख़बासत—मूढ़ता ।

भावार्थ – (जो मेरे परम रूप को नहीं जानते) उनकी आशा व्यर्थ, कर्म व्यर्थ, ज्ञान व्यर्थ जाता है, वे विवेकहीन होते हैं, वे मोह में डाल रखने वाली राक्षसी तथा आसुरी प्रकृति का आश्रय लिये होते हैं। (राक्षसी और आसुरी स्वभाव के कारण वे मेरे परम रूप को नहीं जान पाते)

13. महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।

वो इन्साँ जो खिसलत में हैं देवता,
जो हैं नेक फ़ितरत महा-आत्मा ।
करें कल्ब यकसू से पूजा मेरी,
मैं हूँ ला-फ़ना मम्बा-ए ज़िन्दगी ।।

शब्दार्थ –महात्मानः—महात्मा लोग; तु—परन्तु; माम्—मुझे; पार्थ—हे अर्जुन! दैवीम्—दैवी; प्रकृतिम्—प्रकृति को; आश्रिताः—आश्रय लेते हुए; भजन्ति—उपासना करते हैं; अनन्यमनसः—एकाग्र मन वाले; ज्ञात्वा—जान कर; भूतादिम्—प्राणीमात्र के आदि कारण; अव्ययम्—अनश्वर, अविनाशी ।

खिलसत—स्वभाव; नेक—शुभ; फ़ितरत—स्वभाव; कल्ब यक्सू—एकाग्रता से; ला-फ़ना—अविनाशी; मम्बा ए ज़िन्दगी—प्राणियों की उत्पत्ति का कारण ।

भावार्थ –इसके विपरीत, हे अर्जुन! महात्मा लोग दैवी प्रकृति का (दैवीय स्वभाव का) आश्रय लेकर, मुझे प्राणीमात्र का आदिकारण समझ कर, अनन्य चित्त से मुझ अनश्वर (ब्रह्म) की उपासना करते हैं ।

14. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।

हमेशा वो गुण मेरे गाते रहें,
वो ऐहद अपना जी से निभाते रहें ।
इबादत करें मेहनत और शौक से,
करें मुझ को सजदे दिली ज़ौक से ।।

शब्दार्थ – सततम्–सदा; कीर्तयन्तः–कीर्तन करते हुए; माम्–मुझ को; यतन्तः–प्रयत्न करते हुए; च–और; दृढव्रताः–संकल्पपूर्वक; नमस्यन्तः–नमस्कार करते हुए; च–और; माम्–मुझ को; भक्त्या–भक्ति से; नित्ययुक्ताः–सदा रत रहकर; उपासते–पूजा करते हैं ।

ऐहद–प्रतिज्ञा; इबादत–उपासना; सजदे–वन्दना; दिलीज़ौक–हार्दिक उत्साह ।

भावार्थ – ये महात्मा मेरी महिमा का नित्य कीर्तन करते हुए सुदृढ़ संकल्प के साथ प्रयास करते हुये, मुझे नमस्कार करते हुये भक्ति भाव से निरन्तर मेरी पूजा करते हैं ।

15. ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।

कई रूप देखें मेरे बे-शुमार,
वो हों ज्ञान यज्ञ से इबादत गुज़ार ।
हो वाहदत कि कसरत हर आहंग में,
मुझे पूजते हैं वो हर रंग में ।।

शब्दार्थ – ज्ञानयज्ञेन–ज्ञान-यज्ञ से; च–और; अपि–भी; अन्ये–दूसरे; यजन्तः–यज्ञ करते हुए; माम्–मुझको; उपासतेः–उपासना करते हैं; एकत्वेन–एकत्व रूप से; पृथक्त्वेन–नाना रूप से; बहुधा–बहुत प्रकार से; विश्वतोमुखम्–विश्व रूप में ।

बेशुमार–अगणित; इबादत–उपासक; वाहदत–एकत्व; कसरत–नानात्व, आहंग–रूप में ।

भावार्थ – (इस भक्ति-यज्ञ के अलावा) दूसरे लोग 'ज्ञान-यज्ञ' से भजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं । बहुत करके कई लोग मेरी एकत्व रूप में, कई नाना रूप में उपासना करते हैं, मैं तो विश्व रूप में हूँ, सब कहीं रहने वाला हूँ ।

16. अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।।

तू यज्ञ और पूजा मुझी को समझ,
शराधों का गल्ला मुझी को समझ ।
मैं बूटी हूँ, मन्त्र हूँ, अग्नि हूँ, घी,
मैं यज्ञ भी हूँ और उनके आमाल भी ।।

शब्दार्थ – अहम्–मैं; क्रतुः–कर्मकाण्ड; अहम्–मैं; यज्ञः–स्मार्त यज्ञ; स्वधा–पितरों को दिया जाने वाला पिण्डदान; औषधम्–सामग्री; एव–ही; आज्यम्–घृत; अग्निः–अग्नि; हुतम्–आहुति ।
गल्ला–अन्न; आमाल–कर्म ।

भावार्थ – परन्तु मैं ही कर्मकाण्ड हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ; मैं ही पितरों को दिये जाने वाला पिण्डदान (स्वधा) हूँ; मैं ही औषधि हूँ, मैं ही मंत्र हूँ, मैं ही घी हूँ, मैं ही अग्नि हूँ, मैं ही आहुति हूँ ।

17. पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।।

मैं सारे जहाँ का हूँ माता-पिता,
मैं दादा हूँ सबका, मैं हूँ आसरा ।
सज़ावार-ए उरफ़ाँ हूँ, पाकीज़ा भेद,
मैं हूँ ॐ मैं ऋक् यजुर साम वेद ।।

शब्दार्थ – अहम्–मैं; अस्य–इसका; जगतः–जगत का; धाता–धारण करने वाला; वेद्यम्– जानने योग्य; पवित्रम्–पवित्र; ओंकारः–ओंकार; ऋक्–ऋग्वेद; साम–सामवेद; यजुः–यजुर्वेद; एव–ही; च–और ।
सज़ावार-ए उरफ़ाँ–जानने योग्य; पाकीज़ा भेद–पवित्र रहस्य ।

भावार्थ – मैं इस जगत् का पिता, माता, आश्रय हूँ, पितामह हूँ, मैं ही जानने योग्य एवं पवित्र ओंकार हूँ, ऋक्-साम-यजुर्वेद मैं ही हूँ ।

18. गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।

मैं आका मैं वाली सज्जन मैं गवाह,
मैं मन्जल मैं मस्कने मैं जाय-पनाह ।
मैं आगाज़-ओ इत्जाम-ओ गंज-ओ मकाम,
मैं वो बीज हूँ जो रहेगा मदाम ।।

शब्दार्थ – गतिः–गति (शरण, आश्रय); भर्ता–पोषक; प्रभवः–उत्पत्ति-स्थान; प्रलयः–विनाश; स्थानम्–स्थिति; निधानम्–आधार; बीजम्–बीज; अव्ययम्–अविनाशी ।

आका–स्वामी; वाली–भर्ता; मंजल–गति; मस्कन–निवास; जाय पनाह–शरण लेने योग्य; आगाज़–उत्पत्ति; इन्ज़ाम–प्रलय; गन्ज-ओ मकाम–परमधाम; मदाम–सदैव ।

भावार्थ – गति मैं हूँ, पोषक मैं हूँ, प्रभु मैं हूँ, साक्षी मैं हूँ, निवास मैं हूँ, शरण मैं हूँ, सुहृद् मैं हूँ, संसार की उत्पत्ति-विनाश-स्थिति मैं हूँ, आश्रय एवं अविनाशी बीज भी हूँ ।

19. तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।

मुझी से तपश भी हो कुन्ती के लाल,
कभी ख़ुश्क साली कभी बर-शगाल ।
फ़ना-ओ बका की मुझी से नमूद,
मुझी से है सत और असत का वजूद ।।

शब्दार्थ – तपामि–तपता हूँ; अहम्–मैं; वर्षम्–वर्षा को; निगृह्णामि–रोकता हूँ; उत्सृजामि–छोड़ता हूँ, बरसने देता हूँ; च–और; अमृतम्–अमृत; च–और; एव–ही; सद्- असत्–सत् और असत्; अहम्–मैं ।

खुश्क–अनावृष्टि; बर-शयाल-अत्यवृष्टि; फ़ना–मृत्यु; बका–अमृत; नमूद–प्रगट होना; वजूद–अस्तित्व ।

भावार्थ – मैं ही तपता हूँ, मैं ही वर्षा को रोक रखता और बरसने देता हूँ, मैं अमृत हूँ साथ ही मृत्यु भी मैं ही हूँ, मैं सत् भी हूँ, असत् भी हूँ ।

20. त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपाया यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।

जिन्हें तीनों वेदों में है दस्तरस,
वो जन्नत के तालिब पियें सोम रस ।
परस्तार मेरे ये मासूम लोग,
मिले उनको जन्नत में देवों का भोग ।।

शब्दार्थ –त्रैविद्याः–तीनों वेदों के ज्ञाता; माम्–मुझको; सोमपाः– सोमरस को पीने वाले; पूतपापाः–पापरहित; यज्ञैः–यज्ञों द्वारा; इष्ट्वा–पूजा करके; स्वर्गतिम्–स्वर्ग प्राप्ति को; प्रार्थयन्ते–प्रार्थना करते हैं; ते–वे; पुण्यम्–पुण्य कर्म को; आसाद्य–लेकर; सुरेन्द्रलोकम्–इन्द्र लोक में; अश्नन्ति–खाते हैं, भोगते है; दिव्यान्–दिव्य; दिवि–स्वर्ग में; देवभोगान्–देवों के भोगों को ।

दस्तरस–पारंगत; जन्नत–स्वर्ग; तालिब–इच्छुक; परस्तार–उपासक ।

भावार्थ –तीनों वेदों को जानने वाले, सोम-रस का पान करने वाले, पाप से रहित कर्मकाण्डी लोग यज्ञों द्वारा मेरी उपासना करते हुए स्वर्ग प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं । वे अपने पुण्यकर्मों को लेकर इन्द्र-लोक में पहुँचते हैं, वहाँ द्युलोक में दिव्य देव-दुर्लभ भोगों को भोगते हैं ।

21. **ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।**
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।।

फ़िज़ाओं में जन्नत की खुशियाँ मनायें,
मगर हो के खाली यहीं लौट आयें ।
मुराद अपनी वेदों से पाते रहें,
वो आते रहें और जाते रहें ।।

शब्दार्थ –ते–वे; तम्–उस; भुक्त्वा–भोग करके; स्वर्गलोकम्–स्वर्गलोक को; विशालम्–विशाल को; क्षीणे–क्षीण होने पर; पुण्ये–पुण्यों के; मर्त्यलोकम्–इस मरणशील संसार में; विशन्ति–पहुँचते हैं; एवम्–इसप्रकार; त्रयीधर्मम्–तीन वेदोक्त धर्म को; अनुप्रपन्नाः–शरण में गये हुए; गतागतम्–जाने और आने के क्रम को; आवागमन को; कामकामाः–कामनाओं की कामना करने वाले; लभन्ते–पाते हैं ।

फ़िज़ाओं–वातावरण; मुराद–कामनायें ।

भावार्थ –परन्तु वे उस विशाल स्वर्ग-लोक का आनन्द भोग लेने के बाद, जब उनका संचित पुण्य क्षीण हो जाता है, तब फिर मर्त्य-लोक में आ जाते हैं । इस प्रकार तीनों वेदों की शरण में आने वाले ये

कर्मकाण्डी लोग कामनाओं की कामना करते रहते के कारण जन्म-मरण के चक्कर काटा करते हैं ।

22. **अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।**
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

जो करते हैं खालिस इबादत मेरी,
जो यक-दिल हों जी में न रक्खें दुई ।
करूँ हाजत उनकी पूरी तमाम,
वो मेरी हिफ़ाज़त में हों सुबह शाम ।।

शब्दार्थ – अनन्याः–अनन्यभाव भक्ति वाले; चिन्तयन्तः–निरंतर चिन्तन-परायण; माम्–मुझे; ये–जो; जनाः–व्यक्ति; पर्युपासते–ठीक से पूजते हैं; तेषाम्–उनका; नित्याभियुक्तानाम्–सदा भक्ति में लीन व्यक्तियों की; योगक्षेम–रक्षा; वहामि–पूरी करता हूँ, भार उठाता हूँ; अहम्–मैं ।

खालिस–अनन्य; इबादत–भक्ति; यकदिल–अनन्य-निष्ठ; हाजतें–आवश्यकतायें; हिफ़ाज़त–क्षेम के अर्थ में ।

भावार्थ – परन्तु जो व्यक्ति अनन्य-भाव से मेरे दिव्य रूप का ध्यान करते हुये निरंतर उपासना करते हैं उनकी आवश्यकताओं को मैं पूरा करता हूँ और जो उनके पास है उसकी रक्षा करता हूँ ।

23. **येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।**
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।

सनम दूसरे जो मनाते रहें,
दिल उन पर यकीं से लगाते रहें ।
करें वो न गो हसब-ए दस्तूर काम,
परस्तार वो भी हैं मेरे तमाम ।।

शब्दार्थ – ये–जो; अपि–भी; अन्यदेवताः–अन्य देवों की; भक्ताः–भक्त जन; यजन्ते–पूजा करते हैं, संगति करते हैं, दान आदि करते हैं, देवों के निमित्त से; श्रद्धया–श्रद्धा से; अन्विताः–ओत-प्रोत हृदय वाले, युक्त; ते–वे; अपि–भी; माम्–मुझको; एव–ही;

कौन्तेय—अर्जुन; यजन्ति—पूजा करते हैं; अविधिपूर्वकम्—भले ही यह पूजा उनकी विधिपूर्वक नहीं होती ।

सनम—देवता; यक़ीं—श्रद्धा से; हसब-ए दस्तूर—विधिपूर्वक; परस्तार—उपासक ।

भावार्थ —हे अर्जुन! जो भक्त अन्य देवताओं की भी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, वे भी मेरी ही पूजा करते हैं, भले ही उनकी यह पूजा विधिपूर्वक नहीं होती अज्ञानपूर्वक है ।

24. अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।।

कि यज्ञ जितने करते हैं दुनियाँ में लोग,
मैं हूँ उनका मालिक मैं खाता हूँ भोग ।
न जानें वो मेरी हक़ीक़त का हाल,
इसी वास्ते पायें आखिर ज़वाल ।।

शब्दार्थ —अहम्—मैं; हि—क्योंकि; सर्वयज्ञानाम्—सब यज्ञों का; भोक्ता—भोग करने वाला; च—और; एव—ह; तु—परन्तु; माम्—मुझको; अभिजानन्ति—पहचानते हैं; तत्त्वेन—वास्तव में; अतः—इस कारण से; च्यवन्ति—नीचे गिर जाता है ।

हक़ीक़त—तत्त्व; ज़वाल—पतन ।

भावार्थ —क्योंकि सब यज्ञों का अर्थात् सब प्रकार की पूजाओं का भोगने वाला, उनका स्वामी तो मैं ही हूँ । वे लोग मेरे सच्चे स्वरूप को नहीं पहचानते इसलिये गिर जाया करते हैं, विधि-रहित पूजा किया करते हैं ।

25. यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।

मनायें जो पितरों को पितरों तक आयें,
जो भूतों को पूजें वो भूतों को पायें ।
सनम के पुजारी सनम से मिलें,
हमारे परस्तार हम से मिलें ।।

शब्दार्थ – यान्ति–प्राप्त करते हैं; देवव्रता–देवों की पूजा करने वाले; देवान्–देवों को; पितृन्–पितरों को; यान्ति–प्राप्त करते हैं; पितृव्रताः–पितरों की पूजा करने वाले; भूतानि–भूतों को; यान्ति–प्राप्त करते हैं; भूतेज्याः–भूतों की पूजा करने वाले; यान्ति–प्राप्त करते हैं; मद्याजिनः–मेरी पूजा करने वाले; अपि–भी; माम्–मुझको ।

सनम–देवता; परस्तार–पुजारी ।

भावार्थ – देवों की पूजा करने वाले देवों को, पितरों की पूजा करने वाले पितरों को, भूतों की पूजा करने वाले भूतों को और मेरी पूजा करने वाले मुझ को प्राप्त होते हैं ।

26. **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।**
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

मेरी नज़र देता है जो शौक से,
दिल-ए पाक से चाह से ज़ौक से ।
मैं नज़र उसकी करता हूँ बेशक कबूल,
वो फल हो कि पानी कि पत्ती कि फूल ।।

शब्दार्थ – पत्रम्–पत्ता; पुष्पम्–फूल; फलम्–फल; तोयम्–जल; यः–जो; मे–मुझे; भक्त्या–भक्ति भाव से; प्रयच्छति–अर्पित करता है; तद्–वह; अहम्–मैं; भक्त्युपहृतम्–भक्तिभाव से कुछ न कुछ करने की इच्छा वाले भक्त की भेंट को; अश्नामि–ग्रहण करता हूँ; प्रयतात्मनः–शुद्ध चेतना वाले भक्त से ।

नज़र–भेंट; शोक–उत्साह से; दिल-ए पाक–शुभ भावना; चाह–श्रद्धापूर्वक; ज़ौक से–बड़ी रुचि से, बेशक–निःसंदेह; कबूल–स्वीकार ।

भावार्थ – जो कोई मुझे भक्ति के साथ पत्र, फूल, फल, जल आदि अर्पण करता है उस भक्ति-भाव से कुछ-न-कुछ करने की इच्छा वाले भक्त की भेंट को मैं प्रसन्नता से ग्रहण कर लेता हूँ ।

27. **यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।**
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।

फ़कत मेरी खातिर तू हर काम कर,
हवन दान दे सब मेरे नाम पर ।
तेरा खाना पीना हो मेरे लिये,
तेरा तप से जीना हो मेरे लिये ।।

शब्दार्थ – यत्–जो-कुछ; करोषि–करता है; अश्नासि–खाता है; जुहोषि–हवन करता है; ददासि–दान करता है; तपस्यसि–तप का आचरण करता है; कौन्तेय–हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन; तत्–उसको; कुरुष्व–कर दे; मदर्पणम्–मेरे अर्पण ।

फ़कत–केवल मात्र, खातिर–लिये ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! तू जो-कुछ करता है, जो-कुछ खाता है, जो-कुछ हवन करता है और जो-कुछ तू दान देता है, जो-कुछ तपस्या करता है, वह सब मेरे अर्पण कर ।

28. **शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।**
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ।।

कटेंगे ये कर्मों के बन्धन तमाम,
न होगा बुरे या भले फल से काम ।
जो तू पाक दिल हो के संन्यास पाये,
तो आज़ाद होकर मेरे पास आये ।।

शब्दार्थ – शुभाशुभफलैः–कर्मों के शुभाशुभ फलों से; एवम्–इस प्रकार; मोक्ष्यसेः–तू मुक्त रहेगा; कर्मबन्धनैः–कर्म के फल रूपी बन्धनों से; संन्यासयोगयुक्तात्मा–कर्मों के त्याग के मार्ग में अपने मन को दृढ़तापूर्वक लगाने वाला; विमुक्तः–विमुक्त हुआ; माम्–मुझको; उपैष्यसि–पा जाएगा ।

पाक–शुद्ध चित्त से, आज़ाद–कर्म-बन्धन से छूट कर ।

भावार्थ – इस प्रकार बरतने से कर्मों के शुभ तथा अशुभ फलरूपी बन्धनों से तू मुक्त रहेगा । अपने मन को कर्मों के त्याग के मार्ग में दृढ़तापूर्वक लगाकर तू मुक्त हो जाएगा और मुझ को पा जायेगा ।

29. **समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।**

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।

मेरे वास्ते ख़ल्क यकसा है सब,
न इससे मुहब्बत न उससे ग़ज़ब ।
जो पूजें मुझी को बा-सिदक-ओ यकीं,
मैं उनमें हूँ और वो हैं मुझ में मकीं ।।

शब्दार्थ –समः–एक-सा; अहम्–मै ।; सर्वभूतेषु–सब प्राणियों में; मे–मेरा; द्वेष्यः–द्वेष योग्य, शत्रु; अस्ति–है; प्रियः–प्रेम-पात्र; ये–जो; भजन्ति–भजन करते हैं; तु–परन्तु; माम्–मुझे; भक्त्या–भक्तिपूर्वक; मयि–मुझ में; ते–वे; तेषु–उनमें; च–और; अपि–भी; अहम्–मैं ।

ख़ल्क–प्राणी; यकसाँ–समान; मुहब्बत–राग; ग़ज़ब–द्वेष; बा-सिदक-ओ यकीं–श्रद्धा और प्रेम के साथ, मकीं–निवासित ।

भावार्थ –मैं सब प्राणियों के लिये एक-सा हूँ। मुझे किसी से न द्वेष है, न प्रेम । जो भक्तिपूर्वक मुझे भजते हैं वे मुझ में हैं और मैं उनमें हूँ ।

30. **अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।**

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।

कोई आदमी गरचि बदकार है,
मगर मेरा दिल से परस्तार है ।
उसे भी समझ ले कि साधु है वो,
इरादे में नेकी के यक्सू है वो ।।

शब्दार्थ –अपि–भी; चेत्–यदि; सुदुराचारः–बहुत अधिक दुराचारी; भजते–भजता है; माम्–मुझको; अनन्यभाक्–बिना विचलित हुए; एव–ही; सः–वह; मन्तव्यः–मानने योग्य है; सम्यग्–अच्छा, शुभ; व्यवसितः–संकल्प करने वाला; हि–क्योंकि; सः–वह ।

बदकार–दुराचारी; परस्तार–उपासक; यक्सू–दृढ़ ।

भावार्थ – अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी व्यक्ति भी अनन्यभाव से मुझे भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि उसने अच्छे मार्ग पर चलने का संकल्प कर लिया है ।

31. **क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति**
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।।

वो धर्मात्मा जल्द हो जायेगा,
करार-ओ सकूँ दायमी पायेगा ।
समझ ले मेरा भक्त कुन्ती के लाल,
न होगा फ़ना और न पाये ज़वाल ।।

शब्दार्थ – क्षिप्रम्–शीघ्र ही; भवति–होता है; शाश्वत्–स्थायी; शान्तिम्–शान्ति को; निगच्छति–प्राप्त कर लेता है; कौन्तेय–हे कुन्ती-पुत्र! प्रतिजानीहि–विश्वास कर, जान ले; मे–मेरा; भक्तः–भक्त; प्रणश्यति–नष्ट होता है ।

करार–परम शान्ति; दायमी–स्थाई; फ़ना–नाश; ज़वाल–पतन ।

भावार्थ – जब दुराचारी व्यक्ति अनन्यभाव से मुझे भजता है तब वह जल्दी ही धर्मात्मा बन जाता है, उसे चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो जाती है । हे अर्जुन! तू निश्चित् रूप से जान ले । मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता ।

32. **मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।**
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।

बशर पाप के पेट से हो कोई,
वो हो शूद्र या वैश्य या स्त्री ।
मुझे आसरा जब बनायेगा वो,
तो आला मनाज़ल पे जायेगा बो ।।

शब्दार्थ – माम्–मेरी शरण में; हि–क्योंकि; पार्थ–हे अर्जुन; व्यपाश्रित्य–शरणागत होकर; ये–जो; अपि–भी; स्युः–हों; पापयोनयः–निम्न कुल उत्पन्न; स्त्रियः–स्त्रियाँ; वैश्या–वैश्य; तथा–और; शूद्राः–शूद्रजन; ते–वे; अपि–भी; यान्ति–प्राप्त करते हैं; पराम्–परम; गतिम्–गति को ।

बशर—मनुष्य; आला मनाज़ल—परमगति ।

भावार्थ —हे अर्जुन! चाहे कोई नीच कुल में ही उत्पन्न क्यों न हुआ हो, यदि वह मेरी शरण में आ जाता है, चाहे स्त्रियाँ हों, वैश्य हों, शूद्र हों—वे भी परमगति को प्राप्त करते हैं ।

33. किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।।

मुकद्दस ब्राह्मण का रुतबा न पूछ,
ऋषि राज भक्तों का दरजा न पूछ ।
तुझे दुःखी की दुनियाँ-ए फ़ानी मिली,
तू कर सच्चे दिल से परस्तिश मेरी ।।

शब्दार्थ —किम्—क्या; पुनः—फिर; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण जन; पुण्याः—पुण्यकर्मों से युक्त; भक्ताः—भक्त जन; राजर्षयः—राजर्षि; अनित्यम्—नाशवान्; असुखम्—दुःखमय; लोकम्—लोक को; इमम्—इसको; प्राप्य—प्राप्त करके; भजस्व—भजन कर; माम्—मुझको ।

मुकद्दस—पवित्र; रुनबा—पद; दरजा—पद; दुनियाँ-ए फ़ानी—मर्त्य लोक; परस्तिश—पूजा ।

भावार्थ —फिर पुण्यवान् ब्राह्मणों और भक्त राजषियों की तो बात ही क्या यह संसार नाशवान् एवं दुःखमय है, ऐसे संसार को पाकर तू मेरा भजन कर ।

34. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।।

जमा ध्यान मुझ में हो मुझ पर फ़िदा,
तू कर यज्ञ तू मेरे लिये सर झुका ।
अगर योग में दिल लगायेगा तू,
मैं मक्सूद हूँ मुझ को पायेगा तू ।।

शब्दार्थ –मन्मनाः–मुझ में मन लगाने वाला; भव–होजा; मद्भक्तः–मेरा भक्त; मद्याजी–मेरी पूजा करने वाला; माम्–मुझे; नमस्कुरु–प्रणाम कर; माम्–मुझे; एव–ही; एष्यसि–पायेगा; युक्त्वा–जोड़ कर, भक्ति करके; एवम्–ऐसे; आत्मानम्–अपने-आप को; मत्परायणः–मेरी भक्ति में अनुरक्त ।

फ़िदा–न्यौछावर; मक्सूद–उद्देश्य ।

भावार्थ –मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे प्रणाम कर, इस प्रकार से आत्मा को मुझ में नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में ''मैं'' का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व ''परमात्मा'' से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को ''मैं'' के नाम से जाना जाता है ।

दसवाँ अध्याय

ईश्वर के प्रभाव को देवता व मुनि कोई भी पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। वही सब देवताओं व महर्षियों का आदि कारण हैं। उसके सच्चे स्वरूप को जान लेने पर व्यक्ति मुक्त हो जाता है। ज्ञानी लोग सदा प्रभु के गुण गाते हैं। इस संसार में कर्म करते हुए भी यदि हम गहन ध्यान साधना के समय इस विराट, परिदृश्य का एकाग्रचित होकर मनन करें तो हम जीवन में अधिक दयालु, परिश्रमी, प्रेममय, निर्भय, संतुष्ट सुखी एवं श्रद्धालु बन सकते हैं। दूसरों को भी वे परमात्मा की ही विभूतियों के बारे में बतलाते रहते हैं। सत्य का उपदेश करते हैं।

सब प्राणियों के हृदय में आत्मारूप में प्रभु ही निवास करते हैं। वही सारे प्राणियों का आदि, मध्य एवं अंत है। वह अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु है। वह छंदों में गायत्रीछंद, ऋतुओं में बसंत, यादवों में वासुदेव, पाँडवों में अर्जुन, मुनियों में व्यास, कवियों में शुक्राचार्य, तारों में चंद्रमा, वेदों में सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन है। अतः परमात्मा की विभूतियाँ अनंत हैं। उसकी शक्ति विशालतम है और उसकी सम्पूर्णता अथाह है। इन सभी वस्तुओं में वह सार वस्तु है। सारे संसार को उसी ने धारण कर रखा है। वही सबका आधार अर्थात् सर्वाधार है।

1. **भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।**
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।

सुखन संज भगवान् फिर यूँ हुए,
कि सुन ऐ कवि' दस्त प्यारे मेरे।
यह आला सुखन फिर बताता हूँ मैं,
भलाई का रस्ता दिखाता हूँ मैं।।

शब्दार्थ– भूयः–फिर; एव–ही; महाबाहो–हे महाबाहु; शृणु–सुन; मे–मेरे; परमम्–उत्कृष्ट; वचः–वचन को; यत्–जो; ते–तुझे; अहम्–मैं; प्रीयमाणाय–तुझको जो मुझ में आनन्द ले रहा है; हितकाम्यया–तेरे हित की कामना से; वक्ष्यामि–कहूँगा।

सुखन–वचन; कवि-दस्त–महाबाहो (अर्जुन)।

भावार्थ –हे अर्जुन! तू मेरे परम वचन को एक बार फिर सुन। मैं तेरे हित की कामना से यह सब बता रहा हूँ क्योंकि तू मेरी बातों से प्रसन्न हो रहा है।

2. **न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।**
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।।

हुए देवता महर्षि जिस कदर,
मेरी इब्तदा से हैं सब बे-खबर।
मुझी से है सब देवताओं का बूद,
मिला मुझ से हर महर्षि को वजूद।।

शब्दार्थ– मे–मुझे; विदुः–जानते हैं; सुरगणाः–देवता; प्रभवम्– उद्गम को; महर्षयः–महर्षि लोग; अहम्–मैं; हि–निश्चय; देवानाम्–देवगणों का; महर्षीणाम्–महर्षियों का; च–और; सर्वशः–सब प्रकार से।
इब्तदा–उत्पत्ति; बे-खबर–अनजान; बूद–उत्पत्ति; वजूद–अस्तित्व।

भावार्थ –मेरे उद्गम को न देवता जानते हैं, न महर्षि लोग ही जानते हैं, क्योंकि मैं तो देवताओं और महर्षि लोगों का भी सब प्रकार से आदि मूल कारण हूँ।

3. **यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।**
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

समझता है मुझ को जो बे-इब्तदा,
जनम से बरी शाह-ए अर्ज़-ओ समा।
फ़रेब-ए नज़र से वही पाक है,
गुनाहों से आज़ाद-ओ बे-बाक है।।

शब्दार्थ– यः–जो; माम–मुझको; अजम्–न उत्पन्न होने वाला; अनादिकम्–जिसका आरम्भ न हो; च–और; वेत्ति–जानता है; लोकमहेश्वरम्–लोकों का महेश्वर; असम्मूढः–मोह-रहित; सः–वह; मर्त्येषु–मरणधर्मवाले मनुष्यों में; सर्वपापैः–सब पापों से; प्रमुच्यते–छुटकारा पा लेता है।

बे-इब्तदा—अनादि; बरी—रहित; शाह-ए अर्ज़-ओ समाँ—महेश्वर; फ़रेब-ए नज़र—धोखा; गुनाहों—पापों; बेबाक—रहित।

भावार्थ —जो कोई मुझे 'अज', 'अनादि' और लोकों का 'महेश्वर' जानता है, मनुष्यों में वह मोह-रहित है, और सब पापों से मुक्त हो जाता है।

4.   बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।।

मुझी से है सुख दुःख दिलेरी हिरास,
ख़िरद इल्म कल्ब-ए हक़ीक़त शनास।
सदाकत सकूँ ज़ब्त अफ़ू-ओ करम,
मुझी से वजूद और मुझी से अदम।।

शब्दार्थ—बुद्धिः—बुद्धि; ज्ञानम्—सद्सद् विवेक; असम्मोहः—मोह विशेष का न होना; सत्यम्—अनृत रहित नित्य स्थावर सत्य कहलाता है; दमः—इन्द्रियों का इन्द्रियों के विषयों से हटना दम कहलाता है; शमः—इन्द्रियों के उग्र दर्शन-स्पर्शनादि विषयों का शमन; सुखम्—जो इन्द्रियों को सुखकर हो; दुःखम्—जो इन्द्रियों को दुःखकर हो; भवः—किसी का अस्तित्व जो पैदा होने पर प्रकट होता है; अभावः—किसी का न होना; भयम्—भय; च—और; अभयम्—निर्भयता; एव—ही; च—और।

हिरास—डर; ख़िरद—बुद्धि; इल्म—ज्ञान; कल्ब—मन; हक़ीक़त शनास—सत्यता को जानने वाला; सदाकत—सत्यता; सकूँ—शम; ज़ब्त—दम; अफ़ू—क्षमा करना; करम—दया; वजूद—उत्पत्ति; अदम—नाश।

भावार्थ —विवेक शक्ति, ज्ञान, असंमोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, भाव, अभाव, भय, अभय।

5.   अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।।

अहिंसा, किनायत दिल-ए पुर-सकूँ ,
रियाज़-ओ सखा नाम नेक-ओ जबूँ ।
ग़रज़ जानदारों में जो हूँ सफ़ात,
है उन सब का मम्बा मेरी पाक ज़ात ।।

शब्दार्थ– अहिंसा–हिंसा न करना; समता–समत्व की भावना; तुष्टिः–सन्तोष; दानम्–सर्वस्व देने की भावना; भवन्ति–होते हैं; भावाः–भावनाएँ दशाएँ; भूतानाम्–प्राणियों की; मत्तः–मेरे से; एव–ही; पृथग्विधाः–विभिन्न प्रकार की ।

किनायत–सन्तोष; दिल-ए पुरसकँ–प्रशान्त मन; रियाज़-तप; सखा–दान; नेक-ओ ज़बूँ–यश और अयश; सफ़ात–गुण; मम्बा–स्रोत; पाक–पवित्र; ज़ात–सत्ता ।

भावार्थ –अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, यश, अपयश–प्राणियों की ये सब भिन्न-भिन्न दशाएँ मुझ से ही उत्पन्न होती हैं ।

6. **महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।**
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।

वो सातों मुअज़्ज़्ज़ ऋषि नामवार,
मनु और वो चारों कदीमी कुमार ।
जहाँ वाले सब जिनसे पैदा हुए,
वो मेरे ही मन से हुवैयदा हुए ।।

शब्दार्थ– महर्षयः–महर्षिगण; सप्त–सात; पूर्वे–पुराने; चत्वारः–चार; मनवः–मनु; मद्भावाः–मेरे में भाव वाले;मानसाः–मन से उत्पन्न; जाताः–उत्पन्न हुए हैं; येषाम्– जिनका; लोके–लोक में; इमाः–ये ।

मुअज़्ज़्न–पूजनीय; नामवार–प्रसिद्ध; कदीमी–प्राचीन समय के; हवैयदा–प्रगट ।

भावार्थ –सप्त ऋषिगण तथा उनसे भी पूर्व चार अन्य महर्षि एवं सारे मनु मेरे मन से उत्पन्न हैं और विभिन्न लोकों में निवास करने वाले सारे जीव उनसे अवतरित होते हैं ।

7. **एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।**
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।

जो कूअत मेरे योग को जान ले,
हक़ीक़त मज़ाहार की पहचान ले ।
वो कायम रहे योग पर बिलयकीं,
तवाज़न है इसमें तज़ल्ज़ल नहीं ।।

शब्दार्थ– एताम्–इस; विभूतिम्–विभूति को; योगम्–योगशक्ति को; च–और; मम–मेरे; यः–जो; वेत्ति–जानता है; तत्त्वतः–यर्थाथता से; सः–वह; अविकम्पेन–निश्चित् रूप से; योगेन–योग से; युज्यते–लगा रहता है; अत्र–यहाँ, इसमें; संशयः–शंका ।

कूअत–शक्ति; हक़ीक़त–यथार्थता; मज़ाहर–विभूति; कायम–अचल; विलयकीं–निःसन्देह; तवाज़न–स्थिरता; तज़ज़्ज़ल–अस्थिरता ।

भावार्थ –जो कोई इस 'विभूति' को और 'योग-शक्ति' को यथार्थ रूप में जान जाता है, वह अविचल योग में लगा रहता है । इसमें कोई संदेह नहीं है ।

8. **अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।**
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।

मेरी ज़ात है मम्बा-ए कायनात,
मुझी से हुआ अर्तका-ए हयात ।
यकीं इस पे रखते हैं जो ऐहल-ए होश,
करें मेरी भक्ति ब-जोश-ओ ख़रोश ।।

शब्दार्थ– अहम्–मैं; सर्वस्य–सबका; प्रभवः–उत्पत्ति-कारण; मत्तः–मुझ से; सर्वम्–सब सृष्टि; प्रवर्तते–उद्भूत होती है; इति–इस प्रकार; मत्वा–मानकर; भजन्ते–भजते हैं; माम्–मुझको; बुधाः–बुधिमान लोग' भवसमन्विताः–भावना से युक्त ।

ज़ात–सत्ता; मम्बा–स्रोत; कायनात–प्राणीसमूह; अर्तका-ए हयात–फैलाव; यकीं–विश्वास; ऐहल-ए होश–बुद्धिमान्; ब-जोश-ओ ख़रोश–तीव्र उत्साह से ।

भावार्थ –मैं सब की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझ से ही सारी सृष्टि प्रवृत्त होती है–इस बात को जानकर बुद्धिमान् लोग भावपूर्वक मुझे भजते हैं ।

9. **मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।**
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।

मुझी में हैं मन को जमाये हुए,
हैं प्राण अपने मुझ में लगाये हुए ।
वो करते हैं आपस में पुरनूर दिल,
मेरे ज़िक्र से शाद-ओ मसरूर दिल ।।

शब्दार्थ– मच्चित्ताः–मुझ में चित्त लगाने वाले; मद्गतप्राणाः–मेरे प्रति अपने प्राणों को अर्पण करने वाले; बोधयन्तः–उपदेश करते हुए; परस्परम्–एक दूसरे को; कथयन्तः–कीर्तन करते हुए; च–और; माम्–मुझको; नित्यम्–नित्य; तुष्यन्ति–सन्तोष से आप्लावित होते हैं; च– और रमन्ति–रमते हैं ।

पुरनूर–बोधन करना; ज़िक्र–कथन; शाद–प्रसन्न; मसरूर–आनन्दित ।

भावार्थ –मुझ में चित्त लगाकर, मेरे प्रति अपने प्राणों को अर्पण करके, एक-दूसरे को उपदेश करते हुए, नित्य मेरा ही कीर्तन करते हुए वे संतोष से भरपूर तथा आनन्द में रमते रहते हैं ।

10. **तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।**
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।

वो रहते हैं यकदिल मेरे ज़ौक से,
वो करते हैं पूजा मेरी शौक़ से ।
मैं देता हूँ उनको वो दानश का योग,
कि हो जाते हैं मुझसे वासिल वो लोग ।।

शब्दार्थ– तेषाम्–उनका; सततयुक्तानाम्–निरन्तर मुझ से योग करते हुए; भजताम्–भजन करते हुओं का; प्रीतिपूर्वकम्–प्रीति के साथ; ददामि–देता हूँ; बुद्धियोगम्–बुद्धि-योग, ज्ञान-योग; तम्–उसको; येन–जिस बुद्धियोग से; माम्–मुझको; उपयान्ति–समीपता से

प्राप्त कर लेते हैं; ते—वे ।

यकदिल—युक्त; ज़ौक—प्रीतिपूर्वक; शौक—चाव से; दानश का योग—विवेकिनी बुद्धि; वासिल—प्राप्त ।

भावार्थ —जो लोग इस प्रकार निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरे भजन में लगे रहते हैं उन्हें मैं बुद्धि भी ऐसी प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वे मेरे पास ही पहुँच जाते हैं ।

11. **तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।**
नाशयाम्यात्मभवस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।

जो रहम उनकी हालत पे खाता हूँ मैं,
तो घर उनके दिल में बनाता हूँ मैं ।
दिखाता हूँ उनको हिदायत का नूर,
अन्धेरा जहालत का हो जिससे दूर ।।

शब्दार्थ—तेषाम्ः—उनकी; एव—ही; अनुकम्पार्थम्—विशेष कृपा करने के लिये; अहम्—मैं; अज्ञानजम्—अज्ञान से उत्पन्न; तमः—अन्धकार को; नाशयामि—दूर कर देता हूँ; आत्मभावस्थः—उनके आत्मभाव अर्थात् बुद्धि में, हृदय में स्थित हुआ; ज्ञानदीपेन—ज्ञान रूपी दीपक से; भास्वता—प्रकाशमान हुए ।

रहम—दया; हालत—दशा; हिदायत—ज्ञान; नूर—दीपक; जहालत—अज्ञानता ।

भावार्थ —मैं उन पर विशेष कृपा करने के हेतु उनके हृदयों में वास करते हुए ज्ञान के प्रकाशमान दीपक के द्वारा अज्ञानजन्य अंधकार को दूर करता हूँ ।

12. **परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।**
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।

तू आली ख़ुदा तेरा आली मकाम,
वो हस्ती है तू जिसकी अज़मत मदाम ।
तू माबूद-ए अव्वल, तेरी पाक ज़ात,
जन्म से बरी मालक-ए कायनात ।।

शब्दार्थ—परमम्—श्रेष्ठ; भवान्—आप; पुरुषम्—पुरुष; शाश्वतम्—हमेशा रहने वाला; दिव्यम्—दिव्य; आदिदेवम्—आदिदेव; अजम्—अजन्मा; विभुम्—सर्वव्यापी को ।

आली—परम; ख़ुदा—परमात्मा; अजमत—शान; मदाम—सदा; माबूद-ए अव्वल—आदिदेव; पाक—परम पवित्र ।

भावार्थ —हे भगवन्! तू परब्रह्म है, परम पवित्र है, शाश्वत दिव्य पुरुष है, आदिदेव है, अज है, विभु है ।

13. आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।।

उसी तरह लें आपके पाक नाम,
असित, व्यास, देवल, ऋषि भी तमाम ।
यही देव नारद बतायें सफ़ात,
यही आप अपनी सुनायें सफ़ात ।।

शब्दार्थ—आहुः—कहते हैं; त्वाम्—तुझको; ऋषयः—ऋषि लोग; सर्वे—सब; तथा—वैसे ही; असितः—असित नामक ऋषि; देवलः—देवल नामक ऋषि; व्यासः—व्यास नामक ऋषि; स्वयम्—अपने आप; च—और; एव—ही; ब्रवीषि—तू कहता है; मे—मुझे, मेरा ।

पाक—पावन; सफ़ात—गुण ।

भावार्थ —समस्त ऋषियों ने, देवर्षि नारद ने, असित ने, देवल ने, व्यास ने और स्वयं तूने भी मुझे वैसा ही बताया है ।

14. सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।।

ग़रज़ आपने जो बताया मुझे,
यक़ीं केशव भगवान् आया मुझे ।
न समझा कोई आपकी शान को,
कोई देवता हो कि शैतान हो ।।

शब्दार्थ—सर्वम्—सब को; एतत्—इसको; ऋतम्—सत्य; मन्ये—मानता हूँ; यतः—जो कुछ; माम्—मुझे; वदसि—कहता है; केशव—हे कृष्ण! हि—ही; ते—तेरा; व्यक्तिम्—व्यक्तित्व को, स्वरूप को; विदुः—जानते हैं; दानवाः—दानवगण ।

गरज़—फलतः; यक़ीं—विश्वास; शैतान—दानव ।

भावार्थ —हे कृष्ण! जो कुछ तू मुझे कह रहा है इस सबको मैं सत्य मानता हूँ । भगवन् आपके व्यक्तित्व को न देव जानते हैं, न दानव ।

15. **स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।**

भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ।।

जगत् के पति ख़ालिक-ओ किबरिया,
सभी देवताओं के हो देवता ।
पुरुषोत्तम ऊँची है बात आपकी,
अगर बात जाने तो ज़ात आपकी ।।

शब्दार्थ– स्वयम्–स्वयं; एव–ही; आत्मना–आत्मा से, आत्मानम्–आत्मा को, वेतथ–जानता है; त्वम्–तू; पुरुषोत्तम–हे पुरुषों में श्रेष्ठ; भूतभावन–हे जड़-चेतन के उत्पन्न करने हारे! भूतेश–हे जड़-चेतन के स्वामी; देवदेव–हे देवों के देव; जगत्पते–हे संसार के पति ।

ख़ालिक-ओ किबरिया–भूतों के महान् ईश्वर ।

भावार्थ –हे पुरुषोत्तम! हे जड़-चेतन के उत्पन्न करने हारे, हे जड़-चेतन के स्वामी, हे देवों के देव, हे जगत् के स्वामी, आप ही अपने से आपको जानते हैं ।

16. **वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।**

याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।।

करें आप मुझ पर मुकम्मल अयाँ,
जलाल-ए मुकद्दस का वाज़य निशाँ ।
जहाँ फ़ैज़ से जिसके मामूर है,
ज़मीन-ओ ज़माँ जिससे पुरनूर है ।।

शब्दार्थ– वक्तुम्–कहने के लिये; अर्हसि–योग्य है; अशेषेण–सम्पूर्णतया; दिव्याः–दिव्य; हि–ही; आत्मविभूतयः–अपनी विभूतियाँ; याभिः–जिन के द्वारा; विभूतिभिः–विभूतियों के द्वारा; लोकान्–लोकों को; इमान्–इनको; त्वम्–तू; व्याप्य–व्याप्त होकर; तिष्ठसि–ठहरता है ।

मुकम्मल–पूर्णतया; अयाँ–प्रगट; जलाल–विभूति; वाज़य–स्पष्ट; मुकद्दस–पवित्र; फ़ैज़–कृपा; मामूर–पूर्ण; ज़मीन-ओ ज़माँ–धरती और आकाश; पुननूर–प्रकाशित ।

भावार्थ –तू अपनी उन सब दिव्य विभूतियों को जिन विभूतियों द्वारा तू इन लोकों को व्याप्त करके ठहरा हुआ है मुझे बता ।

17. **कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।**
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।

बता दीजिये मेरे योगी ज़रा,
मिले ध्यान से कैसे ज्ञान आपका ।
करूँ किन मुज़ाहर में जम कर ख्याल,
कि खुल जाये मुझ पर हक़ीक़त का हाल ?

शब्दार्थ– कथम्–कैसे; विद्याम्–पहचान सकूँ; अहम्–मैं; योगिन्–हे योगेश्वर कृष्ण; त्वाम्–तुझको; परिचिन्तयन्–चिन्तन करता हुआ; केषु–किन; च–और; भावेषु–रूपों में; चिन्त्यः–चिन्तन करने योग्य; असि–होता है; भगवन्–हे भगवन्; मया–मेरे द्वारा ।
मुज़ाहर–भाव; हक़ीक़त–यथार्थता ।

भावार्थ –हे योगेश्वर ! आपका सदा चिन्तन करते हुए मैं आपको कैसे पहचान सकता हूँ ? हे भगवन् ! किन-किन विविध रूपों में आपका चिन्तन करना चाहिये ।

18. **विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।**
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।।

ज़रा योग अपना ब्याँ कीजिये,
जलाल अपना भगवन् अयाँ कीजिये ।
कि बातें वो अमृत-सी हैं आपकी,
तबीयत नहीं सेर होती कभी ।।

शब्दार्थ– विस्तरेण–विस्तारपूर्वक; आत्मनः–आत्मा के, अपने; योगम्–योग को; विभूतिम्–विभूति को; च–और; जनार्दन–हे जनार्दन श्रीकृष्ण; भूयः–फिर; कथय–कह; तृप्तिः–संतोष; हि–ही; शृण्वतः–सुनते हुए की; अस्ति–है; मे–मेरी; अमृतम्–अमृत-तुल्य वचन को ।
ब्याँ–वर्णन; जलाल–विभूति; अयाँ–प्रगट; तबीयत–मन; सेर–तृप्त ।

भावार्थ –हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! तू अपनी 'योग-शक्ति' और 'विभूति' का फिर से विस्तारपूर्वक कथन कर क्योंकि तेरे अमृततुल्य वचनों को सुनकर मेरी तृप्ति ही नहीं हो रही ।

19. हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।।

हुए सुन के भगवान् यूँ लब-कुशा,
हैं अर्जुन मेरे वस्फ़ ला-इन्तहा ।
जलाल अपना कुछ-कुछ बताता हूँ मैं,
सफ़ात-ए नुमाया दिखाता हूँ मैं ।।

शब्दार्थ– हन्त–अच्छा; ते–तुझे; कथयिष्यामि–कहूँगा; दिव्याः–देवी; हि–क्योंकि; आत्मविभूतयः–अपनी विभूतियाँ; प्राधान्यतः–प्रधान रूप से; कुरुश्रेष्ठ–हे कुरुवंश में श्रेष्ठ! अस्ति–है; विस्तरस्य–विस्तार का; मे–मेरा ।

वस्फ़–विभूतियाँ; लाइन्तहा–बेअन्त; जलाल–विभूति; सफ़ात-ए नुमायाँ–दिव्य विभूतियाँ ।

भावार्थ –हे कुरु कुल में श्रेष्ठ अर्जुन! बहुत अच्छा, मैं अब तुझे अपनी दिव्य विभूतियों का रूप बतलाऊँगा, परन्तु यह वर्णन केवल प्रधान विभूतियों का होगा क्योंकि मेरे विस्तार का तो कहीं अन्त नहीं है ।

20. अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।।

सुन अर्जुन हूँ मैं आत्मा बिलयक़ीं,
जो है जानदारों के दिल में मकीं ।
मैं हूँ मिस्ल-ए जाँ ऐहल-ए जाँ में निहाँ,
मैं अव्वल मैं आखिर मैं हूँ दरमियाँ ।।

शब्दार्थ– अहम्–मैं; गुडाकेश–हे अर्जुन; सर्वभूता- शयस्थितः–सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ; अहम्–मैं; च–और; मध्यम्–मध्य; च–और; भूतानाम्– प्राणियों का; एव–ही; च–और ।

बिलयकीं–निःसन्देह; मकीं–निवासित; मिस्ल-ए जाँ–शरीर में आत्मा में समान (पिण्ड); ऐहल-ए जाँ–ब्रह्माण्ड; निहाँ–छिपा हुआ; अव्वल–आदि; आखिर–अन्त; दरमियाँ–मध्य ।

भावार्थ –हे अर्जुन! मैं प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ आत्मा हूँ। मैं ही भूतमात्र का आदि, मध्य और अन्त हूँ ।

21. **आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।**
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणमहं शशी ।।

है आदित्यों में मेरा विष्णु ख़िताब,
मैं अश्या-ए पुरनूर में आफ़ताब ।
मरीचि मरुतों के अन्दर हूँ मैं,
मनाज़ल में तारों की चन्दर हूँ मैं ।।

शब्दार्थ– आदित्यानाम्–आदित्यों में; अहम्–मैं; ज्योतिषाम्–ज्योतियों में; अंशुमान्–प्रकाशमान; मरीचिः–मरीचि; मरुताम्–मरुद्-गण में; अस्मि–हूँ; नक्षत्राणाम्–नक्षत्रों में; अहम्–मैं; शशी–चन्द्रमा ।
ख़िताब–उपाधि; अश्या-ए पुरनूर–ज्योति; आफ़ताब–सूर्य; मनाज़ल–नक्षत्रों ।

भावार्थ –आदित्यों में विष्णु मैं हूँ, ज्योतियों में प्रकाशमान सूर्य मैं हूँ, मरुतों में मरीचि मैं हूँ, नक्षत्रों में चन्द्रमा मैं हूँ ।

22. **वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः**
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।

समझ मुझ को वेदों में तू वेद साम,
मेरा देवताओं में वासु है नाम ।
हिसों में हूँ मन मुझ को पहचान तू,
तो जाँ ऐहल-ए जाँ की मुझे जान तू ।।

शब्दार्थ– वेदानाम्–वेदों में; अस्मि–हूँ; देवानाम्–देवों में; अस्मि–हूँ; वासवः–इन्द्र; इन्द्रियाणाम्–इन्द्रियों में; च–और; अस्मि–हूँ; भूतानाम्–भूतों में, प्राणियों में; अस्मि–हूँ; भूतानाम्–भूतों में, प्राणियों में; अस्मि–हूँ ।
हिसों–इन्द्रियों; जाँ–आत्मा ।

भावार्थ –वेदों में सामवेद में हूँ, देवों में इन्द्र मैं हूँ, इन्द्रियों में मन मैं हूँ और प्राणियों में चेतना मैं हूँ ।

23. **रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।**
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।।

मैं रुद्रों के अन्दर हूँ शंकर दिलेर,
जो हैं राक्षस यक्ष उनमें कुबेर ।
हूँ वसुओं में अग्नि मुझे तू समझ,
सब ऊँचे पहाड़ों में मेरु समझ ।।

शब्दार्थ— रुद्राणाम्—रुद्रों में; च—और; अस्मि—हूँ; वित्तेशः—कुबेर; यक्षरक्षसाम्—यक्ष और राक्षसों में; वसूनाम्—वसुओं में; पावकः—अग्नि; च—और; अस्मि—हूँ; मेरुः—मेरु; शिखरिणाम्—पर्वतों में; अहम्—मैं ।

भावार्थ —रुद्रों में शंकर मैं हूँ, यक्ष और राक्षसों में कुबेर मैं हूँ, वसुओं में अग्नि मैं हूँ, पर्वतों में मेरु मैं हूँ ।

24. पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ।।

जो पुरोहित हैं उनमें बृहस्पति हूँ मैं,
सुन अर्जुन कि सरकदा पुरोहित हूँ मैं ।
सकन्द ऐहल-ए लशकर के अन्दर कहो,
तो झीलों के अन्दर समुन्दर कहो ।।

शब्दार्थ— पुरोधसाम्—पुरोहितों में; च—और; मुख्यम्—मुख्य; माम्—मुझको; विद्धि—जान, समझ; पार्थ—हे अर्जुन ! सेनानीनाम्—सेनानायकों में; अहम्—मैं; स्कन्दः—कार्त्तिकेय; सरसाम्—जलाशयों में; अस्मि—हूँ । सरकदा—मुख्य; ऐहल-ए लश्कर—सेनापतियों ।

भावार्थ —हे अर्जुन ! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति मुझे समझ । सेनानायकों में कार्तिकेय मैं हूँ, जलाशयों में समुद्र मैं हूँ ।

25. महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।

भृगु यानी ऋषियों का सरदार हूँ,
सुखन में सुखन हर्फ़-ए ओंकार हूँ ।
यज्ञों में जप यज्ञ निराला हूँ मैं,
जो मुहकम हैं उनमें हिमाला हूँ मैं ।।

शब्दार्थ— महर्षीणाम्—महर्षियों में; भृगुः—भृगु; अहम्—मैं; गिराम्—वाणी में; अस्मि—हूँ; एकम्—एक; अक्षरम्—ओंकार; यज्ञानां—यज्ञों में; जपयज्ञः—जपयज्ञ; अस्मि—हूँ; स्थावराणाम्—जड़ पदार्थों में ।
सुखन—अक्षरों; मुहकम—स्थावर ।

भावार्थ —महर्षियों में भृगु मैं हूँ, वाणी में ओंकार मैं हूँ, यज्ञ में जप मैं हूँ जड़ पदार्थों में हिमालय हूँ ।

26. **अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।**
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।

दरख़्तों में पीपल का हूँ मैं दरख़्त,
मैं ऋषियो में नारद हूँ ऐ नेक बख्त ।
हूँ गन्धर्व लोगों में चित्ररथ मैं,
कपिल हूँ मुनि उनमें जो सिद्ध हैं ।।

शब्दार्थ— अश्वत्थः—पीपल; सर्ववृक्षाणां—सब वृक्षों में; देवर्षीणाम्—देवर्षियों में; च—और; गन्धर्वाणाम्—गन्धर्वों में, चित्ररथः—चित्ररथ; सिद्धानाम्—सिद्धों में; कपिलः—कपिल; मुनिः—मुनि ।
नेकबखत—बड़भागी ।

भावार्थ —सब वृक्षों में पीपल मैं हूँ, देवर्षियों में नारद मैं हूँ, गंधर्वों में चित्ररथ मैं हूँ, सिद्धों में कपिल मुनि मैं हूँ ।

27. **उच्चैः श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।**
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।।

मैं घोड़ों में इन्द्र का हूँ अस्प नर,
जो अमृत के मन्थन से आया नज़र ।
मैं फ़ीलों के अन्दर हूँ इन्दर की फ़ील,
जो इन्साँ हैं उनमें शहव-ए अदइल ।।

शब्दार्थ— उच्चैःश्रवसम्—उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा; अश्वानाम्—घोड़ों में; विद्धि—समझ; माम्—मुझको; अमृतोद्भवम्—अमृत से उत्पन्न; ऐरावतम्—ऐरावत; गजेन्द्राणाम्—श्रेष्ठ हाथियों में; नराणाम्—मनुष्यों में; च—और; नराधिपम्—राजा ।
अस्प—घोड़ा; फ़ील—हाथी; शहब-ए अदइल—अद्वितीय राजा ।

भावार्थ –घोड़ों में अमृतमंथन के समय निकला हुआ उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा हूँ। मैं हाथियों में इन्द्र का ऐरावत हूँ। व्यक्तियों में राजा हूँ।

28. **आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।**
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।।

मैं आलात-ए जंगी में बर्क-ए तपाँ,
मैं गाइयों में हूँ कामधुक बेगुमा।
शहनशाह नागों का मैं वासुकी,
हूँ कन्दर्प जिससे हों पैदा सभी।।

शब्दार्थ– आयुधानाम्–अस्त्रों में; अहम्–मैं; वज्रम्–वज्र; धेनूनाम्–गौओं में; अस्मि–हूँ; कामधुक्–कामधेनु; प्रजनः–प्रजनन का हेतु; च–और; अस्मि–हूँ; कन्दर्पः–कामदेव; सर्पाणाम्–सर्पों में; अस्मि–हूँ; वासुकिः–शेषनाग।

आलात–शस्त्र; बर्क-ए तपाँ–वज्र; बेगुमाँ–निःसन्देह।

भावार्थ –शस्त्रों में वज्र मैं हूँ, गायों में कामधेनु मैं हूँ, प्रजनन में कामदेव मैं हूँ, सर्पों में सर्पराज वासुकि मैं हूँ।

29. **अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।**
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।

मैं नागों में हूँ शेष लाइन्तहा,
मैं जलवासियों में वरुण देवता।
मैं पितरों में हूँ अर्यमा ज़ी-हशम,
मैं दुनियाँ के फ़रमारिवाओं में यम।।

शब्दार्थ– अनन्तः–शेषनाग; च–और; अस्मि–हूँ; नागानाम्–सर्पों में; वरुणः–वरुण; यादसाम्–जलचरों में; अहम्–मैं; पितॄणाम्–पितरों में; अर्यमा–अर्यमा; च–और; अस्मि–हूँ; यमः संयमताम्–संयम करने वालों में; अहम्–मैं।

लाइन्तहा–अनन्त; ज़ी-हशम–उच्च पदवी वाला; फ़रमारिदाओं–संयम करने वालों।

भावार्थ –नागों में शेषनाग मैं हूँ, जलचरों में वरुण मैं हूँ, पितरों में अर्यमा मैं हूँ और नियम तथा व्यवस्था द्वारा संयमन करने वालों में यम मैं हूँ।

30. **प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।**

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।।

मैं हूँ दैत्यों में प्रह्लाद सुन,
मैं वक्त उनमें रक्खें जो गिनती का गुण ।
मैं शेर-ए बबर सब दरिन्दों में हूँ,
तो विष्णु का शाही परिन्दों में हूँ ।।

शब्दार्थ—प्रह्लादः—प्रह्लाद; च—और; अस्मि—हूँ; दैत्यानाम्—दैत्यों में; कलयताम्—गणना करने वालों में; अहम्—मैं; मृगाणाम्—पशुओं में; च—और; मृगेन्द्रः—सिंह; अहम्—मैं; वैनतेयः—गरुड़; च—और; पक्षिणाम्—पक्षियों में ।

भावार्थ —दैत्यों में प्रह्लाद मैं हूँ, गणना करने वालों में काल मैं हूँ, पशुओं में सिंह मैं हूँ, पक्षियों में गरुड़ मैं हूँ ।

31. **पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।**

झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ।।

मैं सरसर हूँ उनमें जो हैं तेज़ गाम,
मैं हूँ तेग-ओ शमशीर वालों में राम ।
मुझे मछलियों में मगर जान तू,
तो नहरों में गंगा मुझे मान तू ।।

शब्दार्थ—पवनः—वायु; पवताम्—पवित्र करने वालों में; अस्मि—हूँ; शस्त्रभृताम्—शस्त्रधारियों में; अहम्—मैं; झषाणाम्—मछलियों में; मकरः—मगरमच्छ; च—और; स्रोतसाम्—जलों में, प्रवाहों में; जाह्नवी—गंगा ।

तेग-ओ शमशीर—शस्त्रधारियों में ।

भावार्थ —पावन करने वालों में पवन मैं हूँ, शस्त्रधारियों में राम मैं हूँ, मच्छों में मगरमच्छ मैं हूँ, नदियों में गंगा मैं हूँ ।

32. **सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।**

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।।

मैं आगाज़-ओ इन्जाम ऐहल-ए जहाँ,
जो कुछ दरमियाँ है तो मैं दरमियाँ।
मैं इल्मों में हूँ इल्म जान-ए अक़ील,
दलीलों में अर्जुन मैं हक़ की दलील।।

शब्दार्थ–सर्गाणाम्–सृष्टि मात्र का; च–और; एव–ही; अहम्–मैं; अर्जुन–हे अर्जुन! अध्यात्मविद्या–अध्यात्मविद्या; विद्यानाम्–विद्याओं में; वादः–तर्क; प्रवदताम्–वाद-विवाद करते हुओं में; अहम्–मैं।

आगाज़–आदि; इन्ज़ाम–अन्त; ऐहल-ए जहाँ–सृष्टि; दरमियाँ–मध्य; इल्म–अध्यात्म विद्या; अकील–बुद्धिमान्; हक़ की दलील–सत्य के आधार पर वाद।

भावार्थ –हे अर्जुन! सृष्टिमात्र का आदि, अन्त तथा मध्य भी मैं हूँ, विद्याओं में अध्यात्मविद्या मैं हूँ, वादविवाद करने वालों का तर्क मैं हूँ।

33. **अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।**
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।

अलफ़ है सुखन जो करे इबतदा,
मैं हूँ अत्फ़ लफ़्जों को दे जो मिला।
मैं हूँ वक्त जिसको फ़ना ही नहीं,
मुहाफ़िज़ हूँ वो जिसका रुख हर कहीं।।

शब्दार्थ–अक्षराणाम्–अक्षरों में; अकारः–अकार; अस्मि–हूँ; द्वन्द्वः–द्वन्द्व समास; सामासिकस्य–समासों में; च–और; अहम्–मै; एव–ही; अक्षयः–अविनाशी; धाता–धारण करने वाला विधाता; अहम्–मैं; विश्वतोमुखः–सब दिशाओं में मुखवाला।

अलफ़–अ; सुखन–बोल; इवतदा–शुरू, अत्फ़–द्वन्द्व समास; फ़ना–नाश; मुहाफ़िज़–धाता।

भावार्थ – अक्षरों में 'अकार' मैं हूँ, समासों में द्वन्द्व-समास मैं हूँ, अविनाशी काल मैं ही हूँ, सब दिशाओं में मुखवाला सृष्टि का विधाता मैं हूँ।

34. **मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।**
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।

क़ज़ा हूँ जो करती है सब को फ़ना,
नई ज़िन्दगी की हूँ मैं इबतदा ।
मैं हूँ सल्फ़-ए नाज़ुक में इकबाल-ओ नाम,
सुखन हाफ़जा अफ़ू अक़्ल-ओ क्याम ।।

शब्दार्थ— मृत्युः—मत्यु; सर्वहरः—सर्वभक्षी; च—और; भविष्यताम्—भविष्य में होने वाली चीजों का; कीर्तिः—यश; श्रीः—लक्ष्मी; वाक्—वाणी; च—और; नारीणाम्—नारियों में; स्मृतिः—स्मृति; मेधा—बुद्धि; धृतिः—धैर्य; क्षमा—सहनशक्ति ।

कज़ा—मृत्यु; इबतदा—शुरुआत; सल्फ़-ए नाज़क—नारियों में; इकबाल—कीर्ति; नाम—श्री; सुख़न—वाणी; हाफ़जा—स्मृति; अफ़ू—क्षमा; अक्ल—बुद्धि; क्याम—धृति ।

भावार्थ —मैं सर्वभक्षी मृत्यु हूँ, भविष्य में होने वालों की उत्पत्ति का कारण मैं हूँ; नारियों में कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा मैं हूँ ।

35. बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।

मैं सामों में बृहत-साम ऐ होशमन्द,
तो छन्दों में गायत्री का हूँ मैं छन्द ।
महीनों में मुझको अघन कर शुमार,
बहारों में फूलों की हूँ मैं बहार ।।

शब्दार्थ— बृहत्साम—बृहत्साम-नामक सामवेद के गीत; साम्नाम्—साम-गीतों में; गायत्री—गायत्री छन्द; छन्दसाम्—छन्दों में; अहम्—मैं; मासानाम्—मासों में; मार्गशीर्षः—मार्गशीर्ष; अहम्—मैं; ऋतूनाम्—ऋतुओं में; कुसुमाकरः—वसन्तऋतु ।

होशमन्द—बुद्धिमान; अघन—मार्गशीर्ष ।

भावार्थ —मैं सामवेद के गीतों में बृहत्साम हूँ, छन्दों में गायत्री मैं हूँ, मासों में मार्गशीर्ष मैं हूँ, सारी ऋतुओं में फूल खिलाने वाली वसन्त ऋतु मैं हूँ ।

36. द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।।

जुआ हूँ मैं उनमें जो चलते हैं चाल,
जलाल उनका जिनमें है जाह-ओ जलाल ।
इरादा भी मैं फ़ता-ओ नुसरत भी मैं,
जो सादक हैं उनकी सदाकत भी मैं ।।

शब्दार्थ– द्यूतं–जुआ; छलयताम्–छलियों में; अस्मि–हूँ; तेजः–तेज; तेजस्विनाम्–तेजस्वियों में; अहम्–मैं; व्यवसायः–प्रयत्न; सत्त्वम्–सत्वगुण; सत्त्ववताम्– सात्त्विक भावना वालों में; अहम्–मैं ।

जलाल–तेज; जाह-ओ जलाल–तेजस्वियों का तेज; इरादा–निश्चय; फ़ता–विजय; नुसरत–उच्च पदवी; सादक–सत्त्वशील; सदाकत–सत्त्व ।

भावार्थ –मैं छलियों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ, मैं जीतने वालों की विजय हूँ, निश्चय करने वालों का निश्चय हूँ और सात्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ ।

37. वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।

मैं वृष्णों में हूँ वासुदेव ऐ मशीर,
कबीले में पाँडू के अर्जुन अमीर ।
मैं हूँ व्यास उनमें हैं जितने मुनि,
जो शायर हैं उनमें हूँ उशना कवि ।।

शब्दार्थ– वृष्णीनाम्–वृष्णियों में; वासुदेवः–वासुदेव; अस्मि–हूँ; पाण्डवानाम्–पाण्डवों में; धनंजयः–अर्जुन; मुनीनाम्–मुनियों में; अपि–भी; अहम्–मैं; व्यासः–व्यास; कवीनाम्–क्रांतदर्शियों में; उशना–शुक्राचार्य; कविः–कवि हूँ ।

मशीर–मन्त्री; उशना–शुक्राचार्य ।

भावार्थ –वृष्णि-कुल में वासुदेव मैं हूँ अर्थात् मैं तेरा सखा हूँ । पाण्डवों में (अर्जुन) मैं हूँ; मुनियों में वेदव्यास मैं हूँ, कवियों में शुक्राचार्य मैं हूँ ।

38. दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।

जो हाकिम हैं मैं उनकी तहज़ीर हूँ,
जो फ़ातह हैं मैं उनकी तदबीर हूँ ।
मैं राज़ों में हूँ खाम्शी परदा-पोश,
मैं हूँ ज्ञान उनका जो हैं इल्म-कोश ।।

शब्दार्थ– दमयताम्–दमन करने वालों में; अस्मि–मैं हूँ; जिगीषताम्–जीतने की इच्छा रखने वालों में; मौनम्–मौन; च–और; एव–ही; गुह्यानाम्– गूढ़ रहस्यों में; ज्ञानम्–ज्ञान; ज्ञानवताम्–ज्ञानियों में; अहम्–मैं ।

हाकिम–शासक; तहजीर–शासन; फ़ातह–विजयी; तदबीर–नीति; खाम्शी–मौन; परदा-पोश–गुह्य भेद; इल्म-कोष–ज्ञानवान् ।

भावार्थ –दमन करने वाले शासकों का दण्ड मैं हूँ, जय चाहने वालों की नीति मैं हूँ, रहस्यपूर्ण वस्तुओं में मौन मैं हूँ, ज्ञानियों का यथार्थ ज्ञान मैं हूँ ।

39. यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।

करूँ ख़ल्क-ए आलम की तरदीज मैं,
हूँ अर्जुन हर इक चीज़ का बीज मैं ।
है साकन कोई या कि सैय्यार है,
मगर मुझ से बाहर न ज़िनहार है ।।

शब्दार्थ– यत्–जो; च–और; अपि–भी; सर्वभूतानाम्–सब प्राणियों का; बीजम्–जगत् का उत्पत्ति कारण बीज; तद्–वह; अस्ति–है; विना–बिना; यत्–जो; स्यात्–हो; मया–मुझ से; भूतम्–प्राणी; चराचरम्–चर और अचर; जड़–जंगम ।

खल्क-ए आलम–सृष्टि; तरदीज–उत्पत्ति; साकन–जड़; सैयार–चेतन; ज़िनहार–कदापि ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! सब प्राणियों की उत्पत्ति का जो भी बीज है, कारण है, वह मैं हूँ । जो भी चर तथा अचर है, जंगम तथा स्थावर है, इनमें से ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे बिना रह सके ।

40. नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।।

परतंप ! यह गौर कर ले ज़रा,
मेरे पाक जलवे हैं लाइन्तहा ।
जो थोड़ा-सा तुझ से ब्याँ कर दिया,
नमून-सा गोया अयाँ कर दिया ।।

शब्दार्थ– अन्तः–अवसान; अस्ति–है; मम–मेरी; दिव्यानाम्– दिव्य; विभूतीनाम्–विभूतियों का; परंतप–हे अर्जुन ! एषः–यह; तू–तो; उद्देशतः–निर्देशपूर्वक; प्रोक्तः–कहा है; विभूतेः–विभूति का; विस्तरः–विस्तार; मया–मैंने ।

जलवे–दिव्य विभूतियाँ; लाइन्तहा–अनन्त; अयाँ–प्रगट ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अन्त नहीं है । यह जो मैंने विभूतियों का विस्तार तुझे बतलाया है, वह केवल दिग्दर्शन कराने के उद्देश्य से बतलाया है ।

41. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।

नज़र आये कूअत कहीं या जलाल,
शकोह-ओ तजम्मल कि हुसन-ओ जमाल ।
समझ ले कि इसमें है जलवा फ़गन,
मेरे बेकराँ नूर की इक किरन ।।

शब्दार्थ– यत्–जो; यत्–जो; विभूतिमत्–विभूति वाली; सत्त्वम्–वस्तु; श्रीमत्–शोभनीय; ऊर्जितम्–ऊर्जा (शक्ति) वाली; एव–ही; वा–अथवा; तत्-तत्–उस-उस को; एव–ही; अवगच्छ–जान, समझ; त्वम्–तू; मम्–मेरे; तेजोंऽश- संभवम्–तेज के अंश से उत्पन्न हुआ ।

कूअत–शक्ति; जलाल–तेज; तजम्मल–ऐश्वर्य; हुसन-ओ जमाल–अति सुन्दर; जलवा–प्रकाशित; बेकराँ–अनन्त; नूर–तेज ।

भावार्थ –इस जगत् में जो-जो वस्तु विभूतिशाली है, श्री वाली है, ऊर्जा वाली अर्थात् शक्तिवाली है, उस-उस को मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ समझ ।

42. अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् । ।

न तफ़सील में जा के उलझन बढ़ा,
कि कसरत से अर्जुन तुझे काम क्या ।
मेरा इक शम्मा हुआ है अयाँ,
इसी से है मैमूर सारा जहाँ । ।

शब्दार्थ– बहुना–बहुत से; एतेन–इस प्रकार से; किम्–क्या; ज्ञातेन–जानने से; तब–तेरा; विष्टभ्य–व्याप्त होकर; अहम्–मैं; इदम्–इस; कृत्स्नम्–सम्पूर्ण; एकांशेन–एक अंश द्वारा ।

तफसील–विस्तार; कसरत–नानत्व; शमाँ–अंशमात्र; अयाँ–प्रगट; मैमूर–भरपूर ।

भावार्थ –परन्तु हे अर्जुन ! इस सारे विशद् ज्ञान की आवश्यकता क्या है ? मैं तो अपने एक अंशमात्र से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर इसको धारण करता हूँ ।

विशेष सूचना : यह अध्याय पूर्णतः प्रक्षिप्त है ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में ''मैं'' का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व ''परमात्मा'' से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को ''मैं'' के नाम से जाना जाता है ।